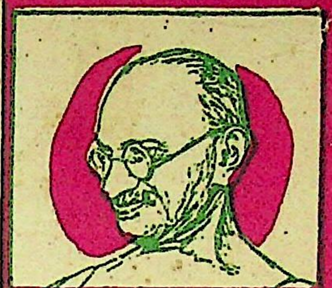
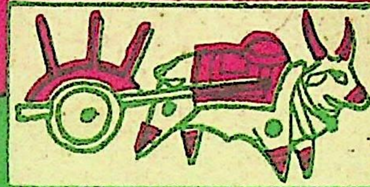
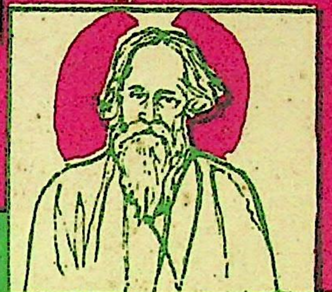


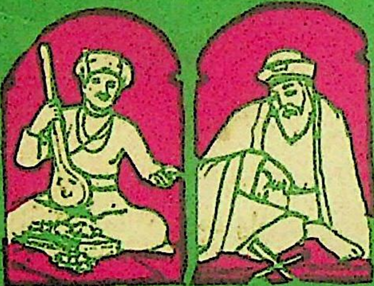
पथ के आलोक









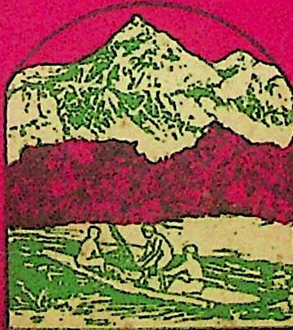






सुबोध साहित्य माला







सुबोध साहित्य माला

पथ के आलोक

सम्पादक
यशपाल जैन



१६६६

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
एन-७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१

•

चौथी बार : १६६६
प्रतियाँ : २,०००
मूल्य : रु० ८.००

•

मुद्रक
पशुपति ऑफसेट
नवीन शहदरा, दिल्ली-३२

यह माला

इस माला में बड़ी सरल-सुबोध भाषा में भारत की आत्मा की झांकी दिखाने का प्रयत्न किया गया है। भारत संतों, विद्वानों, वीरों, पर्वतों, तीर्थों, नदियों, वनों आदि-आदि का देश है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक संस्कृति की ऐसी धारा प्रवाहित होती है, जो सारे देश को एक और अखंड बनाती है।

भारत में अनेक धर्म हैं, अनेक भाषाएं हैं, नाना प्रकार के आचार-विचार हैं, लेकिन फिर भी अनेकता के बीच एकता दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि हमारे संतों और महापुरुषों ने कभी मनुष्य के बाहरी भेदों पर जोर नहीं दिया। उन्होंने इंसान को इंसान के रूप में देखा। हमारे तीर्थ, पर्वत, नदियां आदि किसी धर्म-विशेष के नहीं हैं, सबके हैं।

इस माला की पुस्तकों के पीछे हमारी यही भावना है कि पाठक अपने देश को अच्छी तरह देखें, उसके असली रूप को पहचानें और एक महान देश के नागरिक के नाते उनके जो कर्त्तव्य हैं, उनका पालन करें।

पुस्तकों की भाषा इतनी आसान है कि कम पढ़े-लिखे पाठक भी इन्हें अच्छी तरह पढ़ और समझ सकते हैं। प्रत्येक पुस्तक में कई-कई चित्र भी दिए गए हैं।

हम आशा करते हैं कि पाठक इन पुस्तकों को बड़े चाव से पढ़ेंगे, दूसरों को पढ़वायंगे और इनका भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

पाठकों से

अक्सर माना जाता है कि महापुरुष वे होते हैं, जो महान कार्य किया करते हैं, लेकिन हमारी धारणा है कि वास्तव में महापुरुष वे होते हैं, जो बड़े-बड़े काम तो किया ही करते हैं, किन्तु दैनिक जीवन के छोटे-छोटे कामों में भी जिनकी महानता दिखाई देती है।

इसका मुख्य कारण यह है कि वे मानवीय मूल्यों के उपासक होते हैं और उनमें मानव-प्रेम का स्रोत हर घड़ी उमड़ा रहता है।

इस पुस्तक में हमने ऐसे ही कुछ महापुरुषों के जीवन की चुनी हुई घटनाएं दी हैं। ये घटनाएं बताती हैं कि मनुष्य का सबसे बड़ा गुण सबके प्रति प्रेम है। महावीर, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद और नानक, हजरत उमर आदि का स्मरण होते ही हृदय गद्‌गद् हो जाता है और महात्मा गांधी, अल्बर्ट श्वाइट्ज़र, म्यूरियल लीस्टर, मार्टिन लूथर किंग, कागावा आदि की याद आते ही मानवता की प्रतिमाएं सामने आ खड़ी होती हैं। सचमुच ये सब अज्ञान के अंधकार से भरे पथ के आलोक थे। इन सबके जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग आपको इस पुस्तक में पढ़ने को मिलेंगे।

आप इस पुस्तक को ही नहीं, इस माला की सारी पुस्तकों को पढ़ें और अपने सारे संबंधियों और मित्रों को भी पढ़वायें। प्रेम का जितना प्रसार होगा, मानव उतना ही सुखी और समृद्ध होगा।

—सम्पादक

अनुक्रम

पथ के आलोक

सब ठाठ पड़ा रह जावेगा

□

नज़ीर

टुक हिर्स[1]-ओ-हवस[2] को छोड़ मियां, मत देस-बिदेस फिरे मारा,
क़ज़्ज़ाक़[3] अजल[4] का लूटे है, दिन-रात बजाकर नक्कारा,
क्या बधिया, भैंसा, बैल, शुतुर[5], क्या गोने पल्ला सर भारा,
क्या गेहूं, चावल, मोंठ, मटर, क्या आग-धुवा और अंगारा,
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा ।

गर तू है लक्खी बंजारा और खेप भी तेरी भारी है,
ए ग़ाफ़िल, तुझसे भी चतुरा,[6] इक और बड़ा ब्योपारी है,
क्या शक्कर-मिस्री, क़न्द, गरी, क्या सांभर मीठी खारी है,
क्या दाख, मुनक्का, सोंठ, मिर्च, क्या केसर, लौंग, सुपारी है,
सब ठाठ पड़ा, रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा ।

तू बधिया लावे बैल भरे, जो पूरब पश्छिम जावेगा,
या सूद बढ़ाकर लावेगा, या टोटा-घाटा पावेगा,
कज्ज़ाक अजल का रस्ते में, जब भाला मार गिरावेगा,
धन-दौलत, नाती, पोता क्या, इक कुनबा काम न आवेगा,
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा ।

हर मंजिल में अब साथ तेरे, ये जितना डेरा-डांडा है,[7]
जर,[8] दाम, दिरम[9] का भांडा है, बन्दूक, सिपर[10] और खांडा है,
जब नायक तन का निकल गया, जो मुल्कों-मुल्कों हांडा[11] है,
फिर हांडा है ना भांडा है, ना हलवा है ना भांडा है,
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा ।

---

१. ईर्ष्या २. लोभ, ३. लुटेरा, ४. मौत ५. ऊंट, ६. होशियार
७. सामान ८. धन, सोना, ९. सिक्का, १० बर्छी ११ घूमा

जब चलते-चलते रस्ते में, ये गोन तेरी रह जावेगी,
इक बधिया तेरी मिट्टी पर, फिर घास न चरने आवेगी,
ये खेप जो तूने लादी है, सब हिस्सों में बट जावेगी,
धी[1]-पूत, जंवाई, पोता क्या, बंजारिन पास न आवेगी,
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा ।

ये धूम-धड़क्का साथ लिये, क्यों फिरता है जंगल-जंगल,
इक तिनका साथ न जावेगा, मौकूफ़[2] हुआ जब अन्न और जल,
घर-बार अटारी, चौपारी, क्या ख़ासा, तनसुख[3] है मलमल,
क्या चिलमन,[4] पर्दे, फर्श नये, क्या लाल पलंग और रंगमहल,
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा ।

क्यों जी पर बोझ उठाता है, इन गोनों भारी-भारी के,
जब मौत का डेरा आन पड़ा, तब दूने हैं ब्योपारी है,
क्या साज़ जड़ाऊ, ज़र, जेवर, क्या गोटे थान कनारी के,
क्या घोड़े जीन सुनहरी के, क्या हाथी लाल अंबारी के,
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा ।

हर आन[5] नफ़ा और टोटे हैं, क्यों मरता फिरता है बन-बन,
टुक ग़ाफ़िल दिल में सोच जरा, है साथ लगा तेरे दुश्मन,
क्या लौंडी, बांदी, दाई, दवा, क्या बन्दा, चेला नेक चलन,
क्या मंदिर, मस्जिद, ताल, कुंआ क्या खेती-बाड़ी, फूलचमन,
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब छोड़ चलेगा बंजारा □

---

१. लड़की २. समाप्त ३. एक तरह का कपड़ा ४. पर्दा ५. पल

अद्भुत त्याग

□

मो.क. गांधी

अक्सर सामान्य पाठ्य-पुस्तकों से हमें अचूक उपदेश मिल जाते हैं। मैं उर्दू की रीडरें पढ़ रहा हूं। उनमें कोई-कोई पाठ बहुत सुन्दर दिखाई देते हैं। ऐसे एक पाठ का असर मुझ पर तो भरपूर हुआ है। दूसरों पर भी वैसा ही हो सकता है। अतः उसका सार यहां दिये देता हूं।

पैगम्बर साहब के देहान्त के बाद कुछ ही बरसों में अरबों और रूमियों (रोमनों) के बीच महासंग्राम हुआ। उसमें दोनों पक्ष के हजारों योद्धा खेत रहे, बहुत से जख्मी भी हुए। शाम होने पर आमतौर से लड़ाई बंद हो जाती थी। एक दिन जब इस तरह लड़ाई बंद हुई तब अरब-सेना का एक अरब अपने चचेरे भाई को ढूंढ़ने निकला। उसकी लाश मिल जाय तो दफनाये और जिंदा मिले तो सेवा करे। शायद वह पानी के लिए तड़प रहा हो, यह सोचकर इस भाई ने अपने साथ लोटा-भर पानी भी ले लिया।

तड़पते घायल सिपाहियों के बीच वह लालटेन लिये देखता जा रहा था। उसका भाई मिल गया और सचमुच ही उसे पानी की रट लग रही थी। जख्मों से खून बह रहा था। उसके बचने की आशा थोड़ी ही थी। भाई ने पानी का लोटा उसके पास रख दिया। इतने में किसी दूसरे घायल की 'पानी-पानी' की पुकार सुनाई दी। अतः उस दयालु सिपाही ने अपने भाई से कहा, "पहले उस घायल को पानी पिला आओ, फिर मुझे पिलाना।" जिस ओर से आवाज आ रही थी, उस ओर यह भाई तेजी से कदम बढ़ाकर पहुंचा।

यह जख्मी बहुत बड़ा सरदार था। उक्त अरब उसको पानी पिलाने और सरदार पीने को ही था कि इतने में तीसरी दिशा से पानी की पुकार आई। यह सरदार पहले सिपाही के बराबर ही परोपकारी था। अतः बड़ी कठिनाई से कुछ बोलकर और कुछ इशारे से समझाया कि पहले जहां से पुकार आई है, वहां जाकर पानी पिला आओ।

निःश्वास छोड़ते हुए यह भाई वायुवेग से दौड़कर जहां से आर्त्तनाद आ रहा था, वहां पहुंचा। इतने में इस घायल सिपाही ने आखिरी सांस ले ली और आंखें मूंद लीं। उसे पानी न मिला। अतः यह भाई उक्त जख्मी सरदार जहां पड़ा था, वहां झटपट पहुंचा, पर देखता है तो उसकी आंखें भी तबतक मुंद चुकी थीं। दुःख-भरे हृदय से खुदा की बंदगी करता हुआ वह अपने भाई के पास पहुंचा तो उसकी नाड़ी भी बंद पाई, उसके प्राण भी निकल चुके थे।

यों तीन घायलों में किसी ने भी पानी न पाया, पर पहले दो अपने नाम अमर करके चले गये। इतिहास के पन्नों में ऐसे निर्मल त्याग के दृष्टांत तो बहुतेरे मिलते हैं। उनका वर्णन जोरदार कलम से किया गया हो तो उसे पढ़कर हम दो बूंद आंसू भी गिरा देते हैं, पर ऊपर जो अद्भुत दृष्टांत लिखा गया है, उसके देने का हेतु तो यह है कि उक्त वीर पुरुषों के जैसा त्याग हममें भी आये और जब हमारी परीक्षा का समय आये तब दूसरे को पानी पिलाकर पियें, दूसरे को जिला कर जियें और दूसरे को जिलाने में खुद मरना पड़े तो हंसते चेहरे से कूच कर जायं।

मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पानी की परीक्षा से कठिनतर परीक्षा हवा की है। हवा के बिना तो आदमी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। इसी से संपूर्ण जगत हवा से घिरा हुआ जान पड़ता है। फिर भी कभी-कभी ऐसा भी वक्त आता है जब आलमारी-जैसी कोठरी के अंदर बहुत से आदमी ठूंस दिये गए हों, एक ही सूराख से थोड़ी-सी हवा आ रही हो, उसे जो पा सके, वही जिये, बाकी लोग दम घुटकर मर जायं। हम भगवान से प्रार्थना करें कि ऐसा समय आये तो हम हवा को जाने दें।

हवा से दूसरे नम्बर पानी की आवश्यकता—प्यास है। पानी के प्याले के लिए मनुष्यों के एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने की बात सुनने में आई है। हम यह इच्छा करें कि

ऐसे मौके पर उक्त बहादुर अरबों का त्याग हममें आये, पर ऐसी अग्नि-परीक्षा तो किसी एक की ही होती है। सामान्य परीक्षा हम सबकी रोज हुआ करती है। हम सबको अपने आपसे पूछना चाहिए—"जब-जब वैसा अवसर आता है तब-तब हम अपने साथियों, पड़ोसियों को आगे करके खुद पीछे रहते हैं?" न रहते हों तो हम नापाक हुए, अहिंसा का पहला पाठ हमें नहीं आता। □

ईसामसीह की दयालुता

□

(डा.) कामिल बुल्के

ईसामसीह के दिल में सबके लिए प्रेम था। वह किसी से भी घृणा नहीं करते थे। लोग जिन्हें पापी और बुरा मानते थे, उनके लिए भी ईसा के दिल में दया का भाव रहता था। उनके जमाने में एक सम्प्रदाय था फरीसी। उस सम्प्रदाय के मानने वाले मूसा-संहिता की बहुत ही संकीर्ण व्याख्या करते थे और उस संहिता के छोटे-छोटे नियमों और परम्परागत रीति-रिवाजों का पालन करना अनिवार्य मानते थे। इस तरह उनका धर्म कर्मकांडी बन गया था। जो लोग उसके अनुसार नहीं चलते थे, उन्हें वे पापी समझते थे। अधिकांश पंडित लोग फरीसी थे। इससे समाज में उनकी बड़ी धाक थी।

रोमियों के लिए चुंगी आदि करों की वसूली का काम नाकेदार किया करते थे। फरीसी उन्हें पापी मानते थे। वे यह भी मानते थे कि किसी गैर-यहूदी के घर में पैर रखने से यहूदी अशुद्ध हो जाता है।

ईसा ने मत्ती नाम के एक नाकेदार को अपना शिष्य बनाया। बाइबिल में लिखा है:

एक दिन ईसा अपने शिष्यों के साथ मत्ती के घर भोजन करने गये। उनके साथ और भी बहुत से नाकेदार आकर भोजन करने बैठ गये।

फरीसियों ने यह देखा तो ईसा के शिष्यों से कहा, तुम्हारे गुरु नाकेदारों और पापियों के साथ भोजन क्यों करते हैं?

यह सुनकर ईसा ने उनसे कहा वैद्य की जरूरत नीरोग लोगों को नहीं होती, रोगियों को होती है। इसका मतलब समझो। मैं बलिदान नहीं, बल्कि दया चाहता हूं। मैं धार्मिक लोगों को नहीं, पापियों को बुलाने आया हूं।

फरीसी और पंडित लोग पापियों के प्रति बड़ा ही कठोर व्यवहार करते थे। एक बार फरीसियों ने ईसा को गिरफ्तार करने के लिए प्यादों को भेजा। प्यादों ने लौटकर बताया, "वह आदमी जैसा बोलता है, वैसा कोई कभी नहीं बोला।"

फरीसियों ने कहा, "क्या हमने या हमारे नेताओं में से किसी ने उसमें विश्वास किया है? भीड़ की बात दूसरी है। वह धर्म के नियमों की परवा नहीं करती और शापित है।"

फरीसियों का यह कहना स्वाभाविक था, क्योंकि वे धर्म को भूल गये थे और कर्मकाण्ड से चिपक गये थे।

ईसा ने बुराई को कभी अच्छा नहीं कहा; लेकिन बुराई करनेवाले के प्रति सदा सहानुभूति रखी। इस संबंध में एक बड़ी ही मार्मिक घटना है।

एक दिन ईसा बड़े तड़के मंदिर आये। बहुत से लोग वहां इकट्ठे होकर बैठ गये और ईसा उन्हें शिक्षा देने लगे। इतने में फरीसी और पंडित लोग एक स्त्री को पकड़कर लाये और उसे भीड़ के बीच खड़ा करके कहा, "यह स्त्री व्यभिचार करते हुए पकड़ी गई है। संहिता में मूसा ने ऐसी स्त्रियों को पत्थरों से मार डालने का आदेश दिया है। आप इसके विषय में क्या कहते हैं?"

ईसा सिर झुकाये उंगली से जमीन कुरेद रहे थे। जब उनसे उत्तर देने के लिए बहुत आग्रह किया गया तो ईसा ने सिर उठाया और कहा, "तुममें से जो निष्पाप हो, वही सबसे पहले इसे पत्थर मारे।"

इतना कहकर फिर उन्होंने सिर झुका लिया और धरती को कुरेदने लगे।

उनकी बात को सुनकर बड़ों से लेकर छोटों तक सब चले गये। अकेले ईसा और वह स्त्री रह गई। तब ईसा ने सिर उठाकर उस स्त्री से पूछा, "वे लोग कहाँ हैं? क्या एक ने भी तुम्हें दण्ड नहीं दिया?"

स्त्री बोली, "नहीं, एक ने भी मुझे दण्ड नहीं दिया।"

ईसा ने कहा, "मैं भी तुम्हें दण्ड नहीं दूंगा। जाओ, आगे फिर कभी पाप मत करना।"

ऐसी घटनाओं का अंत नहीं है। एक बार किसी फरीसी ने ईसा को अपने यहां भोजन करने के लिए बुलाया। ईसा उसके घर गये और भोजन करने बैठ गये। उस नगर की एक स्त्री को, जिसे सब पापिनी कहते थे, पता चल गया कि ईसा अमुक फरीसी के यहां भोजन कर रहे हैं। वह संगमरमर के पात्र में इत्र लेकर आई और ईसा के चरणों के पास रोती हुई खड़ी हो गई। उसके आंसू ईसा के चरण भिगोने लगे। स्त्री ने अपने बालों से उन्हें पोंछा और चरणों को चूम-चूमकर उन पर इत्र लगाया।

जिस फरीसी ने उन्हें अपने घर बुलाया था, उसने यह देखा तो मन-ही-मन कहा, "यह आदमी अगर नबी होता तो जरूर जान जाता कि जो स्त्री उसे छू रही है, वह कौन है और कैसी है! वह तो पापिनी है।"

ईसा उसके मन के भाव ताड़ गये। उन्होंने कहा, "सिमोन, मुझे तुमसे कुछ कहना है।"

फरीसी बोला, "कहिये।"

ईसा ने कहा, "किसी महाजन के दो कर्जदार थे। एक पांच सौ दीनार का, दूसरा पचास का। उनके पास कर्ज चुकाने के लिए कुछ भी नही था। इसलिए महाजन ने दोनों का माफ कर दिया। उन दोनों में से महाजन को कौन अधिक प्यार करेगा?"

सिमोन ने उत्तर दिया, "मेरी समझ में तो वह अधिक प्यार करेगा, जिसका ज्यादा कर्ज माफ हुआ।"

ईसा बोले, "तुमने ठीक कहा।" फिर उन्होने स्त्री की ओर मुड़कर कहा, "इस स्त्री को देखते हो? मैं तुम्हारे घर आया, पर तुमने मुझे पैर धोने के लिए पानी नहीं दिया। इसने अपने आंसुओं से मेरे पैर धोये और अपने बालों से पोंछा। तुमने मेरा चुम्बन नहीं किया, लेकिन यह जबसे अन्दर आई है, बराबर मेरे पैर चूम रही है। तुमने मेरे सिर में तेल नहीं लगाया, पर इसने मेरे पैरों पर इत्र लगाया है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि इसके बहुत से पाप माफ हो गये, क्योंकि इसने बहुत प्यार दिखाया है। पर जिसे कम माफ किया गया, वह कम प्यार दिखाता है।"

इसके बाद ईसा ने उस स्त्री से कहा, 'तुम्हारे पाप माफ हो गये।"

भोजन करानेवाले मन-ही-मन कहने लगे, "यह कौन है, जो पापों को भी माफ करता है?"

पर ईसा ने उस स्त्री से कहा, "तुम्हारे विश्वास ने तुम्हारा उद्धार किया है। तुम शान्ति प्राप्त करो। जाओ।"

एक बार ईसा येरिको में प्रवेश करके आगे जा रहे थे। जकेयुस नाम का एक प्रमुख और धनी नाकेदार यह देखना चाहता था कि ईसा कैसे हैं? लेकिन उसका कद बहुत छोटा था। वह भीड़ में उन्हें नहीं देख सका। तब वह आगे दौड़कर एक पेड़ पर चढ़ गया। ईसा उसी रास्ते से निकलने वाले थे। जब ईसा वहां आये तो उन्होंने निगाह उठाकर ऊपर देखा और उससे कहा, "जकेयुस, जल्दी नीचे आओ, क्योंकि आज मुझे तुम्हारे यहां ही ठहरना है।"

जकेयुस की खुशी का ठिकाना न रहा। वह तत्काल पेड़ से उतरकर नीचे आया और उसने बड़े आनन्द से ईसा का स्वागत किया।

और लोग बड़बड़ाते हुए कह रहे थे, "देखो तो, वह एक पापी के यहां ठहरने गये!" ●

वात्सल्य के स्रोत महावीर

□

जमनालाल जैन

भगवान् महावीर को जैन धर्मावलम्बी २४ वां अथवा वर्तमान समय-चक्र का अन्तिम तीर्थंकर मानते हैं। उनका जन्म ईसापूर्व ५९९ में विहार में हुआ था। वैशाली उनकी जन्मभूमि थी। पिता का नाम सिद्धार्थ था, माता का त्रिशला या प्रियकारिणी। वैशाली गणतंत्र के अध्यक्ष चेटक महावीर के नाना थे। सिद्धार्थ उपनगराधिपति थे। महावीर ३० वर्ष तक माता-पिता तथा परिजनों के साथ घर में रहे और फिर दुःख-मुक्ति की अथवा सुख-प्राप्ति की खोज में, घर-बार छोड़कर निकल पड़े। निर्ग्रन्थ दशा में उन्होंने लगभग १२ वर्ष तक घोर तपस्याएं कीं उपवास, किये, ध्यान-साधना की और जनमानस में अपने को उन्मुक्त छोड़कर दृष्टा वनते गये। बारह वर्ष की साधना के परिणामस्वरूप उन्हें कैवल्य की, आत्मज्ञान की, सत्य की, विराट समत्व की, समग्र समन्वय की उपलब्ध हुई। बाद में वे ३० वर्ष तक धर्म-प्रवर्तन करते रहे। ७२ वर्ष की आयु में वे निर्वाण को प्राप्त हुए। आज ढाई हजार वर्षों के बाद भी उनका पावन-स्मरण प्रेम की ज्योति जलाता है।

भगवान महावीर अहिंसा के अवतार माने जाते हैं। वे अवतार नहीं थे, बल्कि अहिंसा उनकी समग्र आत्म-विभूति थी, चेतना थी। वे अहिंसा ही थे। अहिंसा को उन्होंने अनेक आयामों में देखा और अनुभव किया। चलते-फिरते, हिलते-डुलते, बोलते-खाते जीवों या प्राणियों में तो जीवन सब ही देखते हैं, बहुतों ने देखा है, लेकिन महावीर एक ऐसे समता-पुरुष थे, जिन्होंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तक जड़ महाभूतों में जीवन का, चेतना का, अपनत्व का दर्शन किया और अपने को उनके समकक्ष रख दिया। वे मन से, वचन से, काया से पूर्ण प्रेममय थे। यही प्रेम-बीज वे जन-जन के हृदय में बोना चाहते थे।

उनके जीवन की घटनाएं अद्भुत हैं, अतिमानवीय लगती हैं। उन्होंने अपने को अनेक बार प्रतिकूल परिस्थितियों में झोंक दिया—इसलिए नहीं कि उन प्रतिकूलताओं पर वे विजय प्राप्त कर लेंगे या किसी को पराजित कर देंगे। यह सब उन्होंने इसलिए किया कि लोग भय और भ्रम से, मिथ्यात्व से मुक्त हों—वे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी बनें, सम्यक् चारित्र का पालन करें। जो हमें सताता है, मारता-पीटता है, गाली-गलौज करता है, अपमानित करता है, उसमें भी प्रेम है और उस प्रेम का दर्शन मनुष्य को तभी हो सकता है जब वह स्वयं प्रेममय हो। जिसे हम क्रूर-से-क्रूर और भयंकर-से-भयंकर जीव कहते हैं, वह भी प्यार का प्यासा है और चिरकाल तक प्यास न बुझने ने उसकी आग उल्टी दिशा में प्रहारात्मक बन जाती है। महावीर ने इसे अनुभव किया, ऐसी आग को अनेक बार झेला और तब धरती के कण-कण ने इस शुद्ध स्वर्ण को, प्रेम के सागर को, आत्मसात् किया।

यहां महावीर के जीवन-काल में घटित कुछ घटनाएं दी जा रही हैं।

महावीर ने आज ही भवन से वन की ओर प्रयाण किया है। भगवती दीक्षा ग्रहण की है। ज्ञातृखंड वन में सर्व मोह को, मोहित-मूर्च्छित करने वाले पदार्थों को तज कर, पंचमुष्टि केशलोंच करके श्रमण बने हैं, निर्ग्रन्थ बने हैं। कन्धे पर केवल एक वस्त्र है, जिसे इन्द्र ने रख दिया है। उधर सूर्य ढल रहा है और इधर महावीर की यात्रा प्रारम्भ हो रही है। पग गतिमान् हैं। इतने में एक दीन-हीन ब्राह्मण उनके चरणों में विनत हुआ। बोला, "राजकुमार, मैं अभागा ही रह गया। आपने वर्षभर महामेघ की भांति अपनी अतुल धन-सम्पति, मुक्ता-मणियां, बांट दीं। सारा जनपद दरिद्रता से त्राण पा गया। मैं इस अवधि में बाहर था और इस तरह आपकी दान-वर्षा मे वंचित रह गया! बच्चे दाने-दाने को तरस रहे हैं। दरिद्रता से पीड़ित और व्यथित ब्राह्मणी कोस-कोसकर भिक्षाटन

के लिए मुझे बाहर भगा देती है। अब मेरी दरिद्रता दूर करो, प्रभु।"

महावीर ने समझाने की चेष्टा की, "विप्रदेव, अब तो मैं सर्वथा अकिंचन-अपरिग्रही हूं। मेरे पास ऐसा क्या है, जो मैं तुम्हें दूं?"

ब्राह्मण फिर भी उनके चरणों मे लिपटा ही रहा। हवा में लहराता देवदूष्य विप्र को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। उसकी आंखों ने महावीर से कहा, "और कुछ नहीं तो यही दे दो, प्रभु!"

वस्त्र-खण्ड तो वस्त्र-खण्ड ही था, महावीर तो अब देहासक्ति मे भी परे हो चले थे। उन्होंने कंधे पर रखे देवदूष्य को भी दूषण मानकर उसका आधा हिस्सा उस ब्राह्मण को दे दिया।

विप्र को मानो कुबेर की निधि मिल गयी और सचमुच उसकी दरिद्रता धुल गयी।

यह देवदूष्य इतना मूल्यवान् था कि जब ब्राह्मण उसे लेकर एक रफूगर के पास गया तो वह उसे देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। उसने कहा, "यदि इसका आधा हिस्सा और ले आओ तो इसे जोड़कर पूरी शॉल तैयार कर दूं।" विप्र का लोभ बढ़ा और वह तेरह मास तक महावीर के पीछे-पीछे घूमता रहा। एक दिन जब वह वस्त्र महावीर के कंधे पर से गिर पडा तो विप्र ने उसे उठा लिया। महावीर ने मुडकर भी नहीं देखा। कहते हैं, रफू करने के बाद उस वस्त्र को एक राजा ने एक लाख दीनार में खरीद लिया।



महावीर की पद-यात्रा गांव-गांव में अखण्ड रूप से चल रही थी। एक समय वे अस्थिक ग्राम में पहुंचे। गाँव के बाहर टेकड़ी पर शूलपाणि नामक यक्ष का आयतन था। एकांत स्थान देखकर महावीर ने वहाँ ठहरने के लिए ग्रामवासियों से अनुमति माँगी। यक्षायतन के आसपास का वातावरण बड़ा भयावना और आतंकपूर्ण था। लोगों ने कहा, 'देवार्य, वह शूलपाणि दैत्य का चैत्य है और वह अत्यन्त क्रूर है। रात में किसी भी मनुष्य को यहाँ ठहरने नहीं देता और कोई दुस्साहस करे तो मार डालता है। आप और कहीं ठहरने की कृपा करें।"

महावीर तो मनुष्य के मन में सुप्त प्रेम को जागना चाहते थे, क्रूरता तो ऊपरी वृत्ति है। उनको इससे प्रेरणा मिली कि यही तो स्थान है, जहाँ मेरी कसौटी होगी। उन्होंने कहा, "आप लोग अनुमति दे दें, मैं यहीं ठहरना चाहता हूं।"

ग्रामवासियों ने शूलपाणि की विनाशलीला की सम्पूर्ण कहानी सुनायी। यक्ष के पूर्वभव (वृषभ-पर्याय) की सारी कथा सुनने के बाद महावीर को लगा कि इस भय-भैरव स्थान में अभय की उत्कृष्ट साधना तो होगी ही, उस क्रूर यक्ष का भी उद्धार सम्भव है। प्रेम की सामर्थ्य और शक्ति के आगे क्रूरता का कोई मूल्य नहीं होता—यह स्वभाव नहीं है।

महावीर उस चैत्य मे एकांत स्थान देखकर ध्यान-लीन हो गये।

आधीरात गये घने अंधकार में शूलपाणि अपने चैत्य में आया और वहां एक अज्ञात मनुष्य को देखकर आपे से बाहर हो गया। सर्व प्रथम उसने एक गर्जना की। सारी दिशाएं कांप गयीं, दीवारें हिलने लगीं, पर ध्यानावस्थित महावीर स्थिर और शांत खड़े रहे। यक्ष और भी क्षुब्ध हो उठा। वह प्रलयंकर तूफान की तरह भयंकर अट्टहास करके रौद्र नृत्य करने लगा। वह क्षण-क्षण और भी भयंकर कृत्य करने लगा, पर महावीर निर्विकार समताभाव में लीन रहे।

आखिर उसकी क्रूरता थककर महावीर के अभय पदों में विसर्जित हो गयी। महावीर के पावन चरणों के स्पर्श से उसके हृदय में भक्ति एवं स्नेह की धारा उमड़ पड़ी।



महावीर की साधना-यात्रा की एक अद्भुत प्रयोग-स्थली। कनकखल आश्रम से होकर वे उत्तर-वाचाला की ओर गतिमान थे। कुछ ही कदम आगे बढ़े थे कि जंगल से परिचित ग्वाल-बालों ने पुकारा, "देवार्य, रुको! यह रास्ता छोड़ दो, इसमें एक भयानक काला नाग रहता है। वह दृष्टिविष है और उसने अपनी विष-ज्वालाओं से असंख्य यात्रियों को भस्म कर डाला है। पेड़-पौधे झुलस गये हैं। निरापद मार्ग से जाने की कृपा करें।"

महावीर तनिक मुस्कराये। अभय का हाथ ऊपर उठा

कर संकेत किया, "बच्चो, घबराओ नहीं।" महावीर तो विष-ज्वाला के लिए अमृत-जल थे।

महावीर धीरे-धीरे जंगल के बीच विषवर की बांबी के निकट पहुंच गये। घूमता हुआ नाग अपनी बांबी के पास आया। नाग आश्चर्य से देखता रह गया कि आज यह कौन मनुष्य यहां भटक गया है। उसकी आंखों से विषमयी ज्वालाएं निकलने लगीं। लेकिन महावीर पर उसका कोई असर नहीं हुआ। उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसका विष-प्रहार बार-बार निष्प्रभ होने लगा। आखिर उत्तेजित होकर उसने महावीर के अंगूठे को डस लिया।

नाग जरा पीछे हटकर यह देखने लगा कि यह अब गिरा, अब गिरा! लेकिन उसने देखा कि जहां डसा गया है, वहां से दूध जैसी श्वेत रक्तधारा बह रही है। नागराज दूध-पीते बालक की भांति इस दृश्य से अभिभूत, उनकी ओर निहार रहा था। महावीर के सम्पूर्ण शरीर से मानो वात्सल्य-स्रोत निःसृत हो रहा था।

महावीर ने संबोधित किया, "चंडकौशिक, समझो! समझो! अपने क्रोध को शांत करो। अपने में आओ।" चंडकौशिक नाग पानी-पानी हो गया। उसे जातिस्मरण हो गया—पूर्व जीवन की घटनाएं उसके सामने नाचने लगीं।

अब वह नाग विषधर नहीं था, वह अमृतपान कर चुका था। महावीर का प्रेम-प्रयोग सफल हुआ। यह विभाव पर स्वभाव की, क्रोध पर वात्सल्य की विजय थी।□

गुरु नानक की दरियादिली

□

देवेन्द्र सत्यार्थी

गुरु नानक को कौन नहीं जानता! वह मुगल सम्राट बाबर के समय में हुए। उन्होंने भारत पर बाबर के हमले को अपनी आंखों देखा था। उसमें लोगों पर जो मार पड़ी, उससे उनके दिल को कितनी चोट लगी, उसका अनुमान उनकी कविता की इन दो पंक्तियों से लगता है:

"ऐती मार पई कुर लाणे,
तैं की दर्द न आया!"

"लोगों पर इतनी मार पड़ी कि वे बिलबिला उठे। क्या तुम्हें इसका दर्द महसूस नहीं हुआ?"

नानक ने इंसान का दिल पाया था। उसमें सबके लिए दर्द था। वह चाहते थे कि सब लोग मिलकर भाई-भाई की तरह रहें, एक-दूसरे को प्यार करें और एक-दूसरे के दुःख-दर्द में हाथ बटावें।

यह तब सम्भव हो सकता था जब सब लोग सादगी और परिश्रम का जीवन बितावें, कोई किसी को छोटा या बड़ा न समझे और दुनियादारी से ऊपर रहे। गुरु नानक के जीवन में ये सब गुण भरपूर थे।

एक बार वह किसी सभा में बहुत देर तक बोले। उसके बाद उन्हें प्यास लगी तो उन्होंने कहा, "शुद्ध जल लाओ।"

एक पैसे वाला भक्त झट चांदी के गिलास में पानी ले आया। गिलास लेते समय नानक की निगाह उसके हाथ पर गई। बड़ा कोमल हाथ था। नानक ने उसका कारण पूछा तो वह बोला, "महाराज, बात यह है कि मैं अपने हाथ से कोई काम नहीं करता। घर में नौकर-चाकर सारा काम करते हैं।"

नानक ने गंभीर होकर कहा, "जिस हाथ पर कड़ी मेहनत से एकाध चक्का नहीं पड़ा, वह हाथ शुद्ध कैसे हो सकता है? मैं तुम्हारे इस हाथ का पानी नहीं ले सकता।"

इतना कहकर नानक ने पानी का गिलास लौटा दिया।

●

गुरु नानक घूमते रहते थे। एक मरतबा घूमते हुए वह एक गांव में ठहरे। वहां के लोगों ने उनकी खूब खातिर की, सब तरह का आराम पहुंचाया। जब वह वहां से चलने लगे तो गांव वालों को आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा, "यह गांव उजड़ जाय।"

गांववाले यह आशीर्वाद सुनकर हैरान रह गये। सोचने लगे, क्या उनकी सेवा में कोई कसर रह गई? लेकिन उन्होंने कहा कुछ नहीं।

गांव के कुछ लोग उनके साथ हो गये।

नानक दूसरे गांव में पहुंचे, वहां रुके, लेकिन वहां के लोगों ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। उनकी खातिरदारी करना तो दूर, खाने-पीने के लिए भी नहीं पूछा। वहां से विदा होते समय नानक ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "यह गांव आबाद रहे।"

पीछे के गांव के लोगों से अब नहीं रहा गया। उन्होंने कहा, "गुरुजी, यह क्या बात है? जिन्होंने आपकी खूब सेवा की, आपको अच्छी तरह रक्खा, उन्हें आपने उजड़ जाने का आशीर्वाद दिया और जिन्होंने आपको पूछा तक नहीं, उन्हें बस जाने का आशीर्वाद दिया!"

नानक ने जवाब दिया, "जहां हमारी खूब मेहमानबाजी हुई, वह गांव फूलों की बस्ती है। मैंने कहा, वह उजड़ जाय तो इसका मतलब यह था कि वहां के लोग बिखर जायं। वे जहां जायंगे, अपने साथ अपनी मोहब्बत को, अपनी सेवा की, महक ले जायंगे; लेकिन जिस गांव के लोगों ने हमारी पूछताछ नहीं की, वहां कांटों का ढेर था। हमने कहा, वह बस जाय, तो उसका मतलब यह था कि कांटे एक ही जगह रहें। फैल कर लोगों को दुखी न करें।"

●

बचपन से ही नानक साधु-संतों के साथ रहना पसन्द करते थे। अपने गांव तलवंडी से कुछ दूर जंगल में घूमते थे। एक बार उनके पिता ने कुछ काम-धंधा करने के लिए उन्हें कुछ रुपये दिये। संयोग से नानक को कुछ साधु मिल गये। ये साधु कई दिन के भूखे थे।

नानक के पास जो कुछ था, वह उनके खाने-पीने पर खर्च कर दिया। सोचा, भूखों को भोजन कराने से बढ़कर ज्यादा फायदे की बात भला और क्या हो सकती है। यह सौदा ही सच्चा सौदा है।"

ऐसे ही एक दिन वह कुंए से नहाकर लौट रहे थे तो उन्हें एक साधु मिला। बड़ी बुरी हालत में था। नानक का दिल भर आया। उन्होंने अपने पास का सबकुछ उसे दे डाला। फिर आगे बढ़े तो अचानक उनकी निगाह अपनी अंगूठी पर पड़ी। वह साधु के पीछे दौड़े और अंगूठी भी उसे दे आये।

बाद में नानक ने घर-बार छोड़ दिया और दूर-दूर तक की यात्राएं करने लगे। बगदाद होकर वह काबुल गये। वहां बाबर ने उन्हें बुलाया और उनके आगे शराब का प्याला रख दिया। नानक ने कहा, "हमने तो ऐसी शराब पी रक्खी है, जिसका नशा कभी उतरता ही नहीं है। वह शराब हमारे किस काम की, जिसका नशा कुछ देर बाद उतर जाय!"

गुरु नानक के पास प्यार का अनन्त भंडार था। वे सबको प्यार देते थे और इस बात की चिन्ता नहीं करते थे कि उनके साथ कोई कैसा बर्ताव करता है।

उनका एक साथी था भाईबाला। वह जहां जाते थे, भाईबाला को अपने साथ जाने से नहीं रोकते थे। न कभी रबाब बजाने वाले मरदाना को साथ रखने में उन्हें हिचकिचाहट होती थी।

लेकिन कहते हैं, एक बार नानक ने चंद्रलोक जाने की इच्छा की। उन्होंने दोनों साथियों से कहा, "आप लोग यहीं रहो। मैं अकेला ही चंद्रलोक होकर आता हूं।"

साथियों को बड़ा बुरा लगा। वे नहीं चाहते थे कि वे लोग ऐसी यात्रा से वंचित रहें। उन्होंने कहा, "आप हमें साथ जाने से क्यों रोक रहे हैं?"

नानक मुस्कराकर बोले, "अरे, भाई, यह यात्रा न तो पैदल चलकर करनी है, न किसी सवारी में बैठकर। यह तो ध्यान या योग विद्या के सहारे करनी है। उस विद्या का आप लोगों को कोई अनुभव नहीं है।"

इस पर दोनों साथी मुस्कराते हुए कहने लगे, "गुरुजी, ठीक है। आप जाइये और जल्दी वापस आइये। हम आपका यहीं इतजार करेंगे।"

गुरु नानक के बारे में कुछ बड़ी मजेदार बातें कही जाती हैं। कहते हैं, जब दुनिया में उनकी सांसों का इकतारा टूट गया तो नानक स्वर्ग में पहुंचे। वहां वह बड़े उदास रहने लगे। एक दिन भगवान ने पूछा, "आप उदास क्यों रहते हैं?"

नानक ने उत्तर दिया, "यह कैसी जगह है स्वर्ग? न यहां मकई की रोटी है, न सरसों का साग!"

भगवान ने पूछा, "यह मकई क्या है और सरसों का साग किसे कहते हैं?"

नानक बोले, "महाराज, आपने ही तो ये चीजें बनाई हैं और आप ही इन्हें नहीं जानते !"

भगवान ने कहा, "चीजें मैंने जरूर बनाई हैं, पर उनके नाम तो इंसान ने रक्खे हैं।"

यह कहानी किसी के भी दिमाग की उपज हो; लेकिन इससे एक बात साफ़ है और वह यह कि नानक को हमेशा सादगी को जिन्दगी पसन्द रही।

नानक सच्चे दिल के थे, और वैसे ही दिल के लोगों को अपने नजदीक मानते थे। उनके दो बेटे थे, पर उन्होंने गुरु की गद्दी उनमें से किसी को भी नहीं दी। उस गद्दी पर बिठाया उन्होंने अपने एक साथी को, जिसका नाम लहणा था। वह नानक की सेवा में रहता था। पढ़ा-लिखा नहीं था, लेकिन बड़ा ही सच्चा और दिल से सेवा करने वाला था। उसके संस्कार बड़े ऊंचे थे।

पर जाने कैसे उसका मन गुरु नानक की ओर से हट गया। वह उन्हें छोड़कर अपने गांव चला गया।

जब नानक के सामने समस्या आई कि उनके बाद गद्दी पर कौन बैठेगा तो नानक पैदल चलकर लहणा के गांव पहुंचे और उसके द्वार पर दस्तक दी। लहणा बाहर आया तो गुरु नानक ने पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

लहणा ने सोचा, यह भी खूब हैं ! इतने दिन इनकी सेवा की और यह मुझे पहचानते तक नहीं ! मेरा नाम पूछते हैं ! फिर भी ऊपरी सद्भाव दिखाते हुए वह बोला, "मेरा नाम है लहणा।"

नानक मुस्कराये। बोले, "तुम्हारा नाम लेना, मेरा नाम देना। मैं तुम्हें तुम्हारी चीज़ सौंपने आया हूं।"

इतना कहकर उन्होंने गुरु-गद्दी पर भाई लहणा को बिठाने की विधि पूरी करदी और उनका नाम अंगद रख दिया।

नानक ने बहुत दुनिया देखी। वह पच्चीस साल पैदल घूमे। सत्तर साल की उम्र में उन्होंने इस दुनिया से विदा ली।

नानक को हिन्दू प्यार करते थे, मुसलमान मोहब्बत करते थे। उनके शरीर छोड़ने पर हिन्दुओं ने उनकी समाधि बनाई, मुसलमानों ने उनकी कब्र बनाई। लेकिन रावी नदी एक साल उस समाधि और उस कब्र को बहाकर ले गई। उसने यह सिद्ध कर दिया कि जो प्यार की दरिया बहाता रहता है, उसकी जगह लोगों के दिलों में होती है, समाधि या कब्र में नहीं। □

मानवता के पुजारी मुहम्मद

□

विष्णु प्रभाकर

मानवता आखिर है क्या ? क्या उसका सम्बन्ध मात्र मानव से है ? जो मानवेतर हैं, वे क्या उसकी परिधि से बाहर हैं ? जननी और मां दोनों शब्द समानार्थक माने जाते हैं। जननी अपने जने को प्यार करती है। स्वाभाविक है; लेकिन मां के साथ जनने की कोई शर्त नहीं है। सब उसके हैं। वह सबकी है। सबको प्यार करती है।

मानवता की परिधि भी मां की तरह असीम है। मानवीय करुणा और सम्वेदन जीव मात्र के सन्दर्भ में ही सार्थक हो सकते हैं, हुये हैं। इस्लाम धर्म के पैगम्बर हजरत मुहम्मद के सम्बन्ध में यह उतना ही सच है, जितना किसी और के। कथा आती है कि एक बार वे एक बगीचे में गये। वहां बंधा हुआ था एक ऊंट। जैसे ही उसने पैगम्बर को देखा, वह अत्यन्त करुण स्वर में डकराने लगा। उसकी आंखें बरसने लगीं।

उसका वह करुण स्वर मुहम्मदसाहब को कहीं गहरे छू गया। वह तुरन्त उसके पास पहुंचे। उसे पुचकारा। उसके सिर पर, गरदन पर, हाथ फेरा। उसे बार-बार सहलाया, थपथपाया। तब कहीं जाकर वह शान्त हुआ।

उसके बाद मुहम्मदसाहब ने उसके मालिक को बुला भेजा। कहा, "यह ऊंट पशु है। बोल नहीं सकता। इसलिए क्या तुम इस पर अत्याचार करते ही रहोगे ? अल्लाह से भी नहीं डरोगे ? अल्लाह ने ही तो तुम्हें इसका मालिक बनाया है।"

ऊंट के मालिक ने पूछा, "पर मैंने इस पर क्या अत्याचार किया है ?"

मुहम्मदसाहब बोले "इसने मुझसे शिकायत की है कि तुम इससे जरूरत से ज्यादा काम लेते हो। इसे भूखा रखते हो। क्या तुम्हारे ऐसा करने से इसे दुःख नहीं होता? क्या इसके जिस्म में जान नहीं है, वैसे ही जैसे तुम्हारे जिस्म में है, मेरे जिस्म में है? तुमको पूरा खाना न मिले तो?"

सुनकर मालिक ने सिर झुका लिया।

इसी प्रकार एक बार एक आदमी उनके पास आया। उसके पास एक दरी थी। उसमें कुछ बंधा हुआ था। मुहम्मदसाहब ने पूछा, "क्या बंधा है तुम्हारी इस दरी में?"

उस आदमी ने जवाब दिया, "ऐ रसूलल्लाह, मैं जंगल के बीच में से जा रहा था। एकाएक चिड़ियों के बच्चों की आवाज मेरे कानों में पड़ी। उधर जाकर देखा तो वहां कई बच्चों को पाया। उन्हें उठा कर मैंने दरी में बांध लिया। तभी आ पहुंची उनकी मां। बच्चों को बंधा हुआ देखकर वह तड़फड़ा उठी। मैंने दरी खोल दी। मां बच्चों से आ मिली। मैंने उसे भी दरी में लपेट लिया। वे ही सब इस दरी में बन्द..."

इससे पहले कि वह अपनी बात पूरी कर पाता, मुहम्मद साहब ने उसे आदेश दिया, "जाओ, तुरन्त इस चिड़िया मां और इसके बच्चों को वहीं छोड़ कर आओ, जहां से पकड़ कर लाये हो।"

वह आदमी तुरन्त उलटे पैरों लौट गया।

मुहम्मद साहब ने इन घटनाओं के माध्यम से मानो कहा है, 'पशु मूक हैं। वे अपने दर्द की बात नहीं बता सकते। उनकी आंखों की भाषा पढ़ो और उनके साथ मानवीयता का वर्ताव करो। उन्हें बन्दी मत बनाओ। यही मानवीय सम्वेदना है। यही मानवीय करुणा है।

इसी तथ्य को उन्होंने दो और नीतिकथाओं के द्वारा स्पष्ट किया है। एक कुत्ता एक कुएं के पास बैठा प्यास के मारे तड़प रहा था। एक तथाकथित दुराचारिणी उधर आ निकली। उसने कुत्ते को देखा। तुरन्त अपनी कीमती चादर उतारी। उसमें जूते बांधे और कुंए से पानी खींच कर कुत्ते को पिलाया।

कुत्ते के प्राण लौट आये। खुदाबन्द ताला ने उस दुराचारिणी के सब गुनाह माफ कर दिये।

एक दूसरी नारी थी। वह दुराचारिणी नहीं थी। उसने एक बिल्ली को बांध रखा था। उसे वह पेट भर खाने को नहीं देती थी। खोलती भी नहीं थी, जिससे वह कहीं और जाकर खा-पी सके।

परिणाम यह हुआ कि वह भूख से तड़प-तड़प कर मर गयी। अल्लाह ने उस नारी को कड़ा दण्ड दिया।

मानवीय करुणा से ओतप्रोत मानव का हृदय बहुत करुण होता है। एक व्यक्ति का हृदय बहुत कठोर था। वह हजरत मुहम्मद के पास आया। बोला, "मेरा दिल बहुत सख्त है। मैं क्या करूं?"

मुहम्मदसाहब का उत्तर था, "अनाथों के सिर पर हाथ फेरो और भूखों को भोजन खिलाओ। नरम हो जायेगा।"

मानवीय सम्वेदना की कोई सीमा नहीं होती। मुहम्मदसाहब स्वयं ही मानवीय करुणा से ओत-प्रोत नहीं रहते थे, बल्कि जो उनके निकट थे, उनके अन्तर में भी वह प्रस्फुटित हो, यह भी वह देखते थे। एक बार एक फकीर उनके पास आया, बोला, "मैं बहुत दुखी हूं। कई दिन से कुछ नहीं खाया।"

मुहम्मदसाहब ने तुरन्त कई घरों में सन्देशा भेजा कि एक भूखा फकीर आया है। उसके लिए कुछ खाने को हो तो भेजो। सब कहीं से जवाब आया, "हमारे घरों में पानी के सिवा कुछ नहीं है।"

मुहम्मदसाहब के पास तब कई व्यक्ति बैठे थे। उन्होंने उनसे पूछा, "क्या कोई इसे अपना मेहमान बना सकता है?"

उनमें से एक व्यक्ति खड़ा हुआ। उसका नाम था अबूतुल्ला। उसने कहा, "मैं बना सकता हूं।"

वह फकीर को अपने घर ले गया। अन्दर जाकर उसने अपनी पत्नी से पूछा, "एक फकीर मेरे साथ है। क्या उसके लिए खाने को कुछ है?"

पत्नी ने उत्तर दिया, "केवल बच्चों का पेट भर सके, इतना खाना घर में है।"

अबूतुल्ला ने कहा, "बच्चों को किसी तरह बहला-फुसला कर भूखा ही सुला दो। मेहमान के आने पर ऐसा जाहिर करना, जैसे हम भी साथ खायेंगे। जब वह खाने के लिए हाथ बढ़ाये तो तुम ठीक करने के बहाने चिराग के पास जाना और उसे गुल कर देना।"

पत्नी ने ऐसा ही किया। अन्धेरे में मेहमान बेखबर खाता रहा और पति-पत्नी खाने का नाटक करते रहे।

सुबह अबूतुल्ला मुहम्मदसाहब के पास पहुंचा। वह सबकुछ जान चुके थे। उन्होंने अबूतुल्ला को एक खुश-खबरी सुनायी कि अल्लाहताला को अपने फलां बन्दे और फलां बन्दी का, यानी अबूतुल्ला और उसकी पत्नी का, यह काम बहुत पसन्द आया। वह उन पर बहुत खुश है।

मानवीय सम्वेदना के बहुत रूप हैं। मुहम्मदसाहब का समूचा जीवन उसकी व्याख्या है। वह क्षमा को भी एक महत्वपूर्ण मानवीय गुण मानते थे। किसी ने उनसे पूछा था, "अपने बन्दों में आप किसे सबसे ज्यादा इज्जत देंगे?"

मुहम्मदसाहब का उत्तर था, "उसे, जो कसूरवार पर काबू पाने के बाद भी उसे माफ कर दे।"

एक बार वे अबूबकर (जो बाद में इस्लाम धर्म के पहले खलीफा हुए) के पास बैठे थे। एक व्यक्ति वहां आया और अबूबकर को गाली देने लगा। वह शान्ति से सुनते रहे, लेकिन जब वह व्यक्ति शिष्टता की सभी सीमाओं को पार कर गया तो अबूबकर के सब्र का प्याला भी छलक पड़ा। वह जवाब में बोल उठे। उसी क्षण मुहम्मद साहब वहां से उठकर चले गये।

बाद में अबूबकर ने उनके चले जाने का कारण पूछा तो वे बोले, "जबतक तुम चुप थे, अल्लाहताला का एक फरिश्ता तुम्हारे साथ था। जब तुम बोलने लगे तो वह चला गया।"

काश हम इन प्रतीक कथाओं का अर्थ समझ सकें और उसे जी सकें, अन्यथा गुणगान एक व्यवसाय है, जो दोनों पक्षों को धोखा देने में ही कृतार्थ होता है! □

सबके बापू

□

आदर्श कुमारी

सारे संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिसके निवासी महात्मा गांधी के प्रति गहरा स्नेह और आदर न रखते हों। इसका मुख्य कारण यह है कि गांधीजी में अपार करुणा थी और उनका हृदय अत्यन्त विशाल था। भारत में जन्मे थे, लेकिन उन्होंने मानव-मात्र के सुख-दुःख के साथ अपने को एकाकार कर दिया था। बिना किसी भेद-भाव के वह समस्त जीवधारियों को प्रेम करते थे। दुनिया के किसी भी कोने से कराह उठती थी तो गांधीजी व्यथित हो जाते थे। उनकी इस संवेदनशीलता के कारण भारत के ही नहीं, दूर-पास के अन्य देशों के भी स्त्री-पुरुष उनके आत्मीयता-पूर्ण व्यक्तित्व से आकर्षित होकर उनके पास आते थे।

गांधीजी की महानता उनके महान कार्यों में ही दिखाई नहीं देती, बल्कि उनकी छोटी-से-छोटी दैनिक प्रवृत्तियों में भी दीख पड़ती है। सच यह है कि उनके लिए मनुष्य का मूल्य सबसे अधिक था और उनकी मानवीयता उनका सबसे बड़ा गुण था।

गांधीजी अत्यन्त व्यस्त रहते थे, उनका एक-एक क्षण घिरा रहता था; लेकिन विस्मय होता है कि उस सारी व्यस्तता के बीच वह हजारों व्यक्तियों की चिन्ता और दुःख का स्मरण किस प्रकार रख लेते थे! कुष्ठ से पीड़ित परचुरे शास्त्री उनके पास आ गये हैं, बापू उनकी सेवा-शुश्रूषा स्वयं कर रहे हैं, उनके घाव अपने हाथ से धो रहे हैं; काका-साहेब क्षय रोग से स्वस्थ होकर लौट रहे हैं, बापू उनकी प्रिय चीज—गुलाब के फूल—से उनका स्वागत करवा रहे हैं; फल आये हैं, उनमें से चीकू उठाकर अलग कर रहे हैं, क्योंकि चीकू महादेवभाई को प्रिय हैं; शिमला वाइस-राय से मिलने जा रहे हैं, स्टेशन पर सत्यवती मिल जाती हैं तो सबसे पहले वह उनसे पूछते हैं कि तुम्हारी लड़की

को शान्ति निकेतन में बुखार आ गया था, वह अब कैसी है ?

ऐसी दस-बीस नहीं, हजारों मिसालें हैं, जिनसे गांधीजी का मानव-प्रेम परिलक्षित होता है। वाइसराय उन्हें शिमला में एक-दो दिन और रोकना चाहते हैं, लेकिन बापू उनके अनुरोध को ठुकरा देते हैं—"मैं कैसे रुक सकता हूं ? सेवाग्राम में मेरे मरीज जो मेरी राह देख रहे हैं।"

गांधीजी की यह आत्मीयता ही थी, जिसने समूचे विश्व को मानवता के प्रति आकृष्ट किया और अहिंसा को हिंसा से, सत्य को असत्य से और प्रेम को घृणा से अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करके दिखा दिया।

यहां मैं गांधीजी के जीवन के कुछ प्रसंग दे रही हूं, जिनसे पता चलता है कि उनके अन्तर में किस प्रकार प्रेम की मंदाकिनी हर घड़ी प्रवाहित रहती थी और वह छोटी-सी-छोटी घटना के बारे में भी कितने जागरूक रहते थे। वह चाहते थे कि इस संसार में अमीर-गरीब, छोटे-बड़े और ऊंच-नीच की खाइयां न रहें और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श चरितार्थ हो। वह यह भी चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करे कि वैकुण्ठ का राज्य उसके हृदय में है।

दक्षिण अफ्रीका की बात है। वहां किसी कारण से चौदह दिन का उपवास किया। उनके एक जर्मन साथी कैलनबैक को इसकी सूचना चार दिन बाद मिली। उन्होंने व्याकुल होकर गांधीजी को तार दिया कि मैं अमुक गाड़ी से अगले दिन शाम को चार बजे पहुंच रहा हूं।

दूसरे दिन गांधीजी ने बिस्तर पर लेटे-लेटे कहा, "जिसे मेरे साथ स्टेशन चलना हो, वह तैयार हो जाय।"

कुछ साथियों को लेकर गांधीजी स्टेशन पहुंचे। गाड़ी आई, कैलनबैक ने गांधीजी को देखा तो चकित रह गये। बोले, "आप ? मैं तो समझ रहा था कि आप बिस्तर पर होंगे।"

गांधीजी ने हंसते-हंसते कहा, "हां, था तो बिस्तर पर ही, पर मुझे यह सहन नहीं हुआ कि तुम मुझे बिस्तर पर पड़ा समझकर वहां से वहां भागे चले आओ। मेरे लिए इतनी अधिक चिन्ता क्यों हो ? इतना अधिक मोह किसलिए ? मैं तीन मील चलकर तुम्हारे सामने यह बताने के लिए आया हूं कि मैं बिस्तर पर नहीं हूं।"

आश्रम लौटकर संध्या की प्रार्थना के बाद गांधीजी ने सबको संबोधित करते हुए कहा, "तुम लोग गीता के श्लोक कंठस्थ कर लो, तो मैं इससे प्रसन्न नहीं होऊंगा। इतिहास पढ़ो या न पढ़ो, गणित करो या न करो, संस्कृत पढ़ो या न पढ़ो, मुझे कोई चिन्ता नहीं, परन्तु यह आवश्यक है कि तुम संयम-व्रत धारण करो। मुझे यही चाहिए। मैं मनुष्य का गुलाम बनना चाहूंगा, पर अपने मन का नहीं। मन का गुलाम बनने से बढ़कर और कोई अधम पाप नहीं। ...मैं तुममें से किसी को भी सिखाने का अभिमान नहीं रखता। मेरे पास एक शिष्य है, जिसे सिखाना बड़े-से-बड़ा काम है। उसे शिक्षा देकर ही मैं तुम्हारा, हिन्दुस्तान का या मानव-जाति का भला कर सकूंगा और वह शिष्य मैं स्वय ही हूं। इसे मैं अपना मन कहता हूं। इस प्रकार जो अपने को अपना शिष्य बनावेंगे, वही यहां रहने के योग्य हैं।"

एक बार एक विदेशी महिला गांधीजी से मिलने आइ, वह प्रेम और आनन्द से कांप रही थी। शायद कुछ भय भी था। गांधीजी ने कहा, "आओ-आओ, इतनी गुलाबी क्यों हुई जा रही हो ? मेरा खत मिला था ?"

महिला का सहसा मुंह न खुला। फिर जोर डाल कर बोलीं, "नहीं, मुझे नहीं मिला।"

गांधीजी ने कहा, "लेकिन वह तो प्रेम-पत्र था। यह मत समझना कि मैं बुड्ढा हूं।"

सुनकर महिला का चेहरा लाल पड़ गया। वह फुस-फुसाकर कुछ बोलीं। उनकी बात समझकर गांधीजी ने कहा, "सच, वह मेरे प्रेम की ही पत्री थी—लम्बी, कई सफे की। अच्छा, अब तुम हिन्दुस्तान आ गई हो। सेवा करो।"

"मैं यहां की भाषा नहीं जानती।" महिला बोलीं।

"यह तो अच्छा है," गांधीजी ने कहा, "मुंह आप ही बन्द रहेगा। किसी ने तुमसे बात की और तुमने दो

अंगुली मुंह के आगे रख लीं तो समझेगा कि यह गूंगी है।"

कहते-कहते गांधीजी खिलखिलाकर हंस पड़े। महिला गद्गद् हो उठीं, लेकिन दूसरे ही क्षण गांधीजी ने कहा, "हम अन्तिम होंगे...यहां पहले पिछले हो जायंगे और पिछले पहले...यह वाक्य तुम्हारे इंजील (बाइबिल) का ही है न? सब तो नहीं, पर 'गिरि-प्रवचन' मैंने पढ़ा है। अच्छा, अब तुम हिन्दुस्तान में रहोगी। यह तुम्हारा देश होगा। हम दरिद्र हैं, पर दरिद्र में नारायण वसते हैं।... हम दोनों ईसा की राह पर चलेंगे।"

●

श्री ग. वा. मावलंकरजी एक बार कस्तूरबा ट्रस्ट की बैठक में भाग लेने अपनी पत्नी के साथ सेवाग्राम आये। एक कुटिया में उनके रहने का प्रबन्ध किया गया। उन्हें मधुमेह की बीमारी थी। वह भोजन में दूध अधिक लेते थे। इसका गांधीजी को पता था।

सेवाग्राम में गाय का दूध होता था, लेकिन वह हर आदमी को एक निश्चित मात्रा में मिलता था, पर मावलंकरजी का स्वास्थ्य खराब है, उन्हें अधिक दूध की जरूरत होगी, इसलिए गांधीजी ने गोशाला के व्यवस्थापक को बुलाकर कहा, "देखो, भाई मावलंकर और उनकी पत्नी कल यहां आ रहे हैं। सेहत ठीक न होने से उन्हें अधिक दूध की दरकार होगी। इसलिए सबको निश्चित मात्रा में दूध देने का नियम उनके लिए लागू न कर बैठना। उनकी पत्नी से पूछ लेना कि वह नित्य कितना दूध लेते हैं। उतना ही उन्हें देना। दही, छाछ आदि की भी व्यवस्था कर देना, और हां, वह क्या साग-सब्जी लेते हैं, यह भी मालूम कर लेना और उसी हिसाब से प्रबन्ध कर देना।"

गांधीजी यहीं नहीं रुके। आगे कहा, "यहाँ मच्छर बहुत होते हैं। इसलिए उन दोनों के लिए मच्छरदानी की व्यवस्था करना न भूल जाना।"

एक रात उस कुटिया में बिताने के बाद दूसरे दिन सवेरे जब मावलंकरजी गांधीजी से मिलने के लिए गये तो उनका पहला सवाल था, "कहो, रात को नींद ठीक आई न? मच्छरों ने हैरान तो नहीं किया?"

●

यरवदा जेल में श्री गोविन्द राव राघव ने गांधीजी को एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने बिशप की छोटी-सी कहानी भी दी थी। वह बिशप पहाड़ी पर चढ़ रहा था। उसी समय एक छः-सात साल की लड़की भी अपने दो साल के भाई को कंधे पर बिठाकर चढ़ रही थी और हांफ रही थी। यह देखकर बिशप ने उससे कहा, "यह लड़का तो तेरे लिए बहुत भारी है।"

लड़की ने तुरन्त उत्तर दिया, "जरा भी भारी नहीं, यह तो मेरा भाई है।"

यह कहानी पढ़कर गांधीजी ने गोविन्द राव को लिखा, "आपका प्रेम-पूर्ण पत्र मिला। कितना महान विचार है—यह भारी नहीं, यह तो मेरा भाई है। भारी-से-भारी चीज पंख जैसी हल्की बन जाती है, जब प्रेम उसे उठाने वाला होता है।"

●

गांधीजी भंगी बस्ती में ठहरे थे। एक दिन मनु ने एक गिलास में आमों का रस निकाला और उनके पास ले गई। गांधीजी ने पूछा, "आम क्या भाव के थे?"

मनु ने समझा कि बापू मजाक कर रहे हैं। उसने उनकी बात का उत्तर नहीं दिया और दूसरे काम में लग गई। थोड़ी देर बाद वहाँ आई तो देखती क्या है कि रस जैसे-का-तैसा रखा है। उसने कहा, "बापू, रस पी लीजिये।"

गांधीजी ने पूछा, "आम किस भाव के थे, यह तूने पता लगाया?"

मनु चुप।

गांधीजी फिर बोले, "मैं तो समझा था कि तू कीमत पूछने के बाद ही मुझे आम खाने को देगी। तूने ऐसा नहीं किया। मैंने सुना है कि बाजार में दस आने का एक आम बिकता है। अगर ऐसा है तो मैं बिना आम खाये भी जिन्दा रह सकता हूँ। इतने महंगे फल खाने से मेरा खून बढ़ता नहीं, घटता है। ऐसी भयंकर महंगाई के समय तूने मेरे लिए आम के रस का एक गिलास भर दिया! चार आमों का मूल्य ढाई रुपया होता है। एक गिलास रस ढाई रुपये का हुआ। यह रस मैं भला किस मुंह से पी सकता हूँ!"

बापू जब यह कह रहे थे, तभी दो निराश्रित बहनें उन्हें प्रणाम करने आईं। उनके साथ दो बालक भी थे। गांधीजी ने बालकों को प्यार से अपने पास बुलाया और दो कटोरियों में करके रस उन्हें पीने के लिए दे दिया। फिर बोले, "ईश्वर मेरी मदद पर है, यह इसका जीता-जागता उदाहरण है। मैं मन में बड़ा दुखी था। सोच रहा था कि मैं कहाँ पड़ा हूँ। मुझमें कहीं-न-कहीं कोई बुराई है, नहीं तो तुझे मेरे लिए इतने महंगे आमों का रस निकालने की बात कैसे सूझती! लेकिन मुझे इस दोष से बचाने के लिए भगवान ने दो भोले बालकों को भेज दिया। बालक भी वैसे ही भेजे, जैसों की मैं इच्छा रखता था। देख, ईश्वर की मुझ पर कैसी अपार दया है।"

एक दिन बिहार के चम्पारन जिले के एक गांव से होकर लोगों का एक जुलूस देवी के थानक की ओर जा रहा था। संयोग से गांधीजी उस दिन उसी गांव में ठहरे थे। शोर सुनकर गांधीजी ने उनके बारे में पूछा तो कार्य-कर्त्ता पता लगाने बाहर आया। तबतक गांधीजी स्वयं बाहर आ गये और सीधे जुलूस के पास चले गये। उन्होंने देखा, सबसे आगे एक हट्टा-कट्टा बकरा चला जा रहा है। उसके गले में फूलों की मालाएं पड़ी हैं और माथे पर टीका लगा है। वह समझ गये कि यह बलि का बकरा है। उनका हृदय करुणा से भीग गया। लोग अपनी धुन में इतने मस्त थे कि उन्हें यह पता ही नहीं चल सका कि गांधीजी साथ हैं।

थोड़ी देर में जुलूस अपने स्थान पर पहुंचा और बकरे का बलिदान करने की तैयारी होने लगी, तभी गांधीजी उन लोगों के सामने जा खड़े हुए। पूछा, "इस बकरे को आप यहां क्यों लाये हैं।"

कुछ लोग गांधीजी को पहचानते थे। उन्हें कुछ कहते न बना। फिर एक आदमी ने हिम्मत करके कहा, "देवी को भोग चढ़ाने के लिए लाये हैं।"

"ऐसा आप क्यों करते हैं ?" गांधीजी ने पूछा।

"देवी को प्रसन्न करने के लिए।" उन्होंने जवाब दिया।

गांधीजी बोले, "आप देवी को प्रसन्न करने के लिए बकरे की भेंट चढ़ाना चाहते हैं, लेकिन मनुष्य तो बकरे से भी श्रेष्ठ है।"

"जी हां, मनुष्य तो श्रेष्ठ है ही।"

गांधीजी ने कहा, "यदि हम आदमी को चढ़ावें तो क्या देवी अधिक प्रसन्न नहीं होगी ?"

बड़ा अजीब-सा सवाल था। उन देहातियों ने इस पर कभी विचार ही नहीं किया था। वे कोई उत्तर नहीं दे सके। तब गांधीजी ने कहा, "क्या यहाँ पर कोई ऐसा आदमी है, जो देवी को अपना भोग चढ़ाने को तैयार हो ?"

कोई नहीं बोला। थोड़ा रुककर गांधीजी ने कहा, "इसका मतलब यह है कि आपमें से कोई भी तैयार नहीं है, तब मैं तैयार हूँ।"

लोग हक्के-बक्के होकर एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। बड़े व्यथित स्वर मे गांधीजी ने कहा, "गूंगे और निर्दोष प्राणी के रक्त से देवी प्रसन्न नहीं होती। अगर यह बात किसी प्रकार सत्य भी हो तो इंसान का रक्त सबसे अधिक मूल्यवान है। वही देवी को अर्पण करना चाहिए, परन्तु आप ऐसा नहीं करते। मैं कहता हूं कि निर्दोष प्राणी की बलि चढ़ाना पुण्य नहीं है, पाप है, अधर्म है।"

एक बार गांधीजी एक स्कूल देखने गये। उन दिनों वह लंगोटी पहनने लगे थे। कंधे पर एक चादर डाल लेते थे। उन्हें इस रूप में देखकर एक बच्चा बोला, "आपने कुरता क्यों नहीं पहना ? मैं अपनी मां से कहूंगा, वह आपके लिए कुरता सी देगी। आप पहनेंगे न ?"

गांधीजी बोले, "जरूर पहनूंगा, लेकिन एक शर्त्त है, बेटे, मैं अकेला नहीं हूं।"

बच्चे ने पूछा, "तब आपको कितने कुरते चाहिए ? दो। मां से कहूंगा, वह आपके लिए दो कुरते सी देगी।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "दो नहीं, मेरे चालीस करोड़ भाई-बहन हैं। उन सबको कुरते चाहिए। क्या तुम्हारी मां चालीस करोड़ कुरते सी सकेगी ?"

बच्चा शायद कुछ नहीं समझ सका। गांधीजी उसकी

पीठ थपथपाकर चले गये, लेकिन शिक्षकों ने तो सबकुछ समझ ही लिया।

एक रात की बात है। आश्रम के रसोईघर में एक चोर घुस आया। वह भूखा था या उसके मन में कुछ और था, यह कोई नहीं जान सका, परन्तु कुछ व्यक्तियों ने उसे पकड़ लिया और एक कोठरी में बन्द कर दिया।

सवेरा हुआ। नित्य कर्म से निबट कर गांधीजी नाश्ता करने बैठे तब उस चोर को उनके सामने पेश किया गया। किसने पकड़ा, कैसे पकड़ा, यह सब सुनने के बाद गांधीजी ने पूछा "इसे नाश्ता कराया या नहीं?"

"नहीं," आश्रमवासी ने उत्तर दिया।

गांधी ने कहा, "तो पहले इसे नाश्ता कराओ, फिर मेरे पास लाओ।"

आश्रमवासी ने अचरज से कहा, "चोर को नाश्ता कराऊं।"

"हां!" गांधीजी ने उत्तर दिया।

गांधीजी का आदेश था, इसलिए नाश्ता कराना पड़ा, पर चोर भी मनुष्य है, उसे भी भूख लग सकती है, और जो व्यक्ति हमारे बंधन में है, उसे खाने-पिलाने की जिम्मेदारी भी हमारी है, यह बात उस आश्रमवासी के मन में नहीं आई। लेकिन गांधीजी इस बात को कैसे भूल सकते थे!

जब वह चोर नाश्ता करके उनके सामने आया तो उसे बड़े प्रेम से समझाते हुए गांधीजी ने कहा, "भाई, तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए थी। चोरी करना पाप है। गरीबी के कारण तुम्हें चोरी करनी पड़ती है तो ऐसा कहो, मैं तुम्हारे लिए आश्रम में काम की व्यवस्था कर दूं।" □

जापान के गांधी कागावा

□

बनारसीदास चतुर्वेदी

कागावा का जन्म १० जुलाई १८८८ को जापान के कोबे नामक नगर में हुआ था। उनका पूरा नाम था टोयोहिको कागावा। जब वह चार साल के थे तभी उनके पिता का देहान्त हो गया और उनकी माता भी उसी समय चल बसीं। कागावा अपनी बड़ी बहन के साथ अपनी सौतेली मां और दादी के पास रहने के लिए गांव भेज दिये गए।

पौने पांच साल की उम्र में उन्हें पाठशाला में भर्ती कराया गया। हालांकि कागावा को पढ़ना अच्छा लगता था, पर उनकी रुचि खेती की ओर थी और धान की बुवाई के समय वह बराबर किसानों के लड़कों के साथ रहते थे। धान की कटाई के समय भी वह छोटा-सा हसिया लिये खेत पर मौजूद रहते थे। धान के पौधों से वह खड़ाऊं बनाते थे और अपने पहनने के लिए कपड़ा भी बुन लेते थे। मछली पकड़ना और तरह-तरह की चिड़ियों को पालना भी उनके ही सुपुर्द था। घर के घोड़े के लिए घास खोदने को कागावा ही भेजे जाते थे और यह काम उनको पसन्द भी था। घोड़े से उनको प्यार था।

कागावा अपनी धुन के पक्के थे। जो अच्छे विचार उनके मन में आते, उन पर अमल करने के लिए वह तुरन्त तैयार हो जाते। कहीं पर एक बिल्ली का बच्चा मोरी में डूब रहा था। कागावा उसे उठा लाये और नहला कर उसको अपने कमरे में रख लिया। एक मरियल कुत्ते को, जो न घर का था, न घाट का, उन्होंने अपनी देखरेख में ले लिया। जब दूसरे विद्यार्थियों ने इस पागलपन का विरोध किया तो उन्होंने कहा, "किसी सुन्दर और हट्टे-कट्टे कुत्ते को तो चाहे जो प्रेम कर सकता है, पर इस अभागे कुत्ते की चिन्ता कौन करेगा?"

कुत्ते और बिल्ली तक तो गनीमत थी, पर कागावा ने तो कमाल ही कर दिया। वह रास्ते चलते एक भिखारी को अपने कमरे में ले आये और उसे अपने साथ रहने के लिए जगह दे दी। यही नहीं, वे उसे अपने पास से ही भोजन भी कराने लगे, मानो वह उनका सगा भाई ही हो।

मई १९१४ में उनका विवाह बसंती देवी नामक लड़की के साथ हुआ। जिस समय बसंती देवी उनके यहां आई, उसने देखा, छः फुट लम्बी और छः फुट चौड़ी एक कोठरी ही उनका घर था और कागावा ने जिसे अपना परिवार कह कर परिचय कराया था, उसमें एक भी आदमी

उनका सगा-संबंधी नहीं था। उसमें ७० साल का एक बूढ़ा और उसकी ६०-६५ साल की बुढ़िया थी, जिन्हें कोई दूसरी जगह न मिलने पर कागावा ने अपनी कोठरी दे दी थी।

और सदस्यों में अधेड़ उम्र की एक स्त्री थी। जो कागावा के घर में आने से पहले दर-दर की ठोकरें खाती फिरती थी। इसके अलावा एक भिखारिन और एक ११ साल का लड़का भी थे।

कागावा को जो थोड़े से रुपये मिलते थे, उनमें से भी वह कुछ दान कर देते थे, यहाँ तक कि अपने जूते और कपड़ा भी दे डालते थे। अपने से भी गरीब विद्यार्थियों की सेवा करने के लिए वे सदा तैयार रहते थे।

टाल्स्टाय रूस के एक बड़े महात्मा हो गये हैं। कागावा ने उनकी किताबों को पढ़ा। इन किताबों में टाल्स्टाय ने लोगों को अहिंसा पर चलने की सलाह दी थी। इन पुस्तकों को पढ़कर कागावा अहिंसावादी बन गये। उन दिनों रूस और जापान में लड़ाई हो रही थी। कालेज की एक सभा में कागावा ने लड़ाई का विरोध किया और दोनों देशों को शान्ति से रहने की बात कही। इसका नतीजा यह हुआ कि उनके साथी विद्यार्थियों ने उनको देश का दुश्मन कहकर बदनाम करना शुरू किया और उनसे अपने सारे संबंध तोड़ लिए।

विद्यार्थियों को आशा थी कि कागावा दब जायंगे, पर वह दबने वाले नहीं थे। इस पर अंत में विद्यार्थियों ने एक जाल रचा। रात के समय कागावा को भरमा कर कालेज के बाहर खेल के मैदान में ले गये और वहाँ बीस विद्यार्थियों ने मिलकर उनकी खूब मरम्मत की।

जिस समय उन पर घूंसों की बौछार हो रही थी, कागावा हाथ जोड़े खड़े थे और ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कह रहे थे, "हे परमपिता, इन्हें क्षमा करो, क्योंकि ये जानते नहीं कि क्या कर रहे हैं।"

यह उन दिनों की बात है जब कागावा कालेज में पढ़ते थे। सन् १९०९ में एक दिन उन्होंने अपनी गठरी उठाकर गाड़ी पर रख दी और कालेज से सीधे शिकावा की गंदी बस्ती की ओर चल पड़े।

वहां पहुंच कर उन्होंने जो छोटी-सी कोठरी ली, उसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। इस बस्ती में आते ही लोगों ने कागावा को घेरना शुरू कर दिया। एक दिन एक लड़का रोता हुआ उनकी कोठरी में आया। उसके सारे शरीर में खुजली हो रही थी। उसके रहने के लिए और कोई जगह नहीं थी। इसलिए कागावा ने उसे अपनी कोठरी में ही रख लिया। नतीजा यह हुआ कि कागावा को भी खुजली हो गई।

कुछ दिन बाद उनकी कोठरी में एक शराबी घुस आया। वह भी बेघरबार था। कागावा को छोड़ वह कहां जाता! कागावा ने अपनी कोठरी में उसे भी जगह दे दी।

एक हत्यारा था, जो जेल काट चुका था। उसके दिल में डर बैठ गया था कि जिस आदमी को उसने मारा है, वह भूत बनकर उसका पीछा कर रहा है। कागावा ने उसे भी जगह दे दी। वह कागावा के पास सोता था और रात में सोता-सोता डर के मारे कागावा का हाथ किचकिचा कर पकड़ लेता था।

एक आदमी ने आकर कहा, "कई दिन से मुझे पानी के सिवा कुछ भी नहीं मिला।" उसे भी कागावा ने अपने घर में रख लिया।

इस तरह कागावा के परिवार में ४ आदमी हो गये। इन दिनों में उन्हें कालेज से लगभग सोलह रुपये महीने का वजीफा मिलता था। उसमें चार प्राणियों की गुजर करना मुश्किल था। इसलिए कागावा गलियों में जलने वाली लालटेनें को साफ करने का काम करने लगे।

एक बार तो उनकी कोठरी में दस आदमियों ने पनाह ली। उसमें कहीं बैठने तक को भी जगह नहीं रही। आखिर एक दीवार तोड़ दी गई। इन आदमियों में एक आदमी तपेदिक का मरीज था। कागावा उसके कपड़े अपने हाथों से धोते थे। एक का दिमाग ठीक नहीं रहा था, क्योंकि वह काफी पढ़ा-लिखा था, इसलिए उसके घर वालों तथा दोस्तों ने उसे छोड़ दिया था। उनमें एक रोगी वेश्या और एक ऐसी औरत थी, जिसकी आंखों में कोई

खतरनाक बीमारी थी। कागावा को भी यह भयंकर बीमारी लग गई और उनकी आंखों की रोशनी बहुत मंद हो गई।

इन्हीं दिनों एक भिखारी उनकी कोठरी में आया और बोला, "तुम बड़े ईसाई बनते हो। मैं तब जानूं, जब तुम मुझे अपना कुरता दे दो।"

कागावा ने उसे अपना कुरता दे दिया और दूसरे दिन कोट और पाजामा भी उसके हवाले कर दिया।

कागावा की कोठरी के आसपास की कोठरियां बदमाशों के अड्डे थे। उन्हें वेश्यालय कहना अधिक ठीक होगा। कागावा ने वेश्याओं और उनके पास जाने वालों के विरुद्ध बोलना शुरू कर दिया। इसका फल यह हुआ कि कई वेश्याओं को अपना इस तरह का जीवन बिताने पर बड़ा पछतावा हुआ और उन्होंने अपने इस नरक के पेशे को छोड़ कर मेहनत और मजदूरी करने का कागावा को वचन दिया।

जिन धूर्तों और बदमाशों को वेश्यालयों से लाभ होता था, वे बड़े नाराज हुए। एक ने तो यहां तक किया कि वह कागावा के घर में घुस आया और उसने कागावा को धमकाया और उनके खाने-पीने के सारे बर्त्तन तोड़ डाले।

शिकावा की इन गन्दी बस्तियों में जिन्दगी की कोई कीमत नहीं थी, हत्या कर डालना तो एक मामूली-सी बात थी। कागावा के आने से पहले उनकी कोठरी में जो हत्या हुई थी, उसका कारण था सिर्फ पांच आने की रकम। अपने आने के पहले साल में कागावा को सात हत्याएं अपने आस-पास देखनी पड़ीं। उनमें एक हत्या तो मुर्गी के बच्चे (चूजे) के लिए की गई थी। दूसरी हत्या एक औरत के लिए हुई। एक कहता था. वह मेरी है। दूसरा कहता था, वह मेरी है। आपस में लड़ाई हो गई और इसी में एक कत्ल हो गया। इसी तरह एक तेरह साल के लड़के ने अपनी ही उम्र के एक और बच्चे को मार डाला।

जापान में उस समय ऐसी अनेक गंदी बस्तियां थीं। इनमें आमतौर पर रिक्शा खींचने वाले, सड़क खोदने वाले मजदूर, कुली, सस्ती मिठाई बेचने वाले, छोटे-मोटे हाथ देखने वाले, हत्यारे, वेश्याएं और उनके दलाल रहा करते थे। चोरों और जुआरियों के अड्डे भी यहीं पर होते थे।

इक्कीस साल की उम्र में जब कागावा शिकावा की उस गंदी बस्ती में आये तो उन्होंने अपने मन में कहा, "मुझे किसी बात का डर नहीं है—न बीमारी का, न मारे जाने का और न चोर-डकैतों का। आखिर एक दिन मरना तो है ही। वैसे भी मैं ज्यादा नहीं जीऊंगा। डर किसका करूं?"

इस तरह मन में पक्का इरादा करके यह एक अहिंसावादी वीर योद्धा की भांति इस इलाके में आये और १५ साल तक गरीबी, बीमारी और बुरे देशों से लड़ाई लड़ते रहे।

इन सब कामों में कागावा को अपनी पत्नी बसन्ती देवी का बराबर सहयोग मिलता रहा। जो काम कागावा करते, उसको करने में बसन्ती देवी को भी हिचक न होती। वह पढ़ी-लिखी थीं, पर उन्हें ऊंची शिक्षा पाने का मौका नहीं मिला था। उन्होंने इस कमी को पूरा करने की भी कोशिश की।

कागावा दो मजदूर विद्यार्थियों को सुबह और शाम एक-एक घंटा पढ़ाते थ। श्रीमती कागावा भी इस कक्षा में शामिल हो गई। यही नहीं, वह तीसरे पहर स्त्री-समाज के स्कूल में जाकर बाइबिल पढ़ने लगीं। आगे चलकर उन्होंने बड़ी उम्र में दसवां दर्जा पास किया और याकोहामा शहर में तीन साल पढ़ने के बाद बी. ए. पास कर लिया।

उन्होंने दो पुस्तकें लिखीं। एक में तो उन्होंने कारखानों में काम करने वाली लड़कियों का हाल दिया और दूसरी में गंदे मोहल्लों की तस्वीरें खींचीं। इन गन्दे मोहल्लों में जो भयंकर वेश्यावृत्ति चलती थी, उसके बारे में उन्होंने एक लेख किसी पत्र में लिखा। इससे किसी वेश्यालय के मालिक को क्रोध आ गया। वह मौका पाकर एक दिन उस समय कागावा के घर पहुँचा जब कि बसंती देवी अकेली थीं। उसने उनको खूब पीटा, पर इससे बसन्ती देवी विचलित न हुईं, उल्टे उनमें इस अन्याय के विरुद्ध

प्रचार करने का नया हौसला पैदा हो गया।

अपने जीवन के पंद्रह वर्ष शिकावा की इस कोठरी में बिताने का फल यह हुआ कि कागावा के ग्रन्थों को पढ़ कर, उनके भाषणों को सुनकर और उनके जीवन तथा उनकी सेवाओं को देख कर जापान की जनता का ध्यान इन गंदे मोहल्लों की ओर गया। उधर सरकार ने तय किया कि जापान के छः बड़े नगरों—टोकियो, ओसाका, याकोहामा, कोबे, क्योटी और नागोया—के गंदे मोहल्लों को साफ कर दिया जाय।

आज इन नगरों में से किसी में भी गंदे मोहल्लों का नामोनिशान नहीं रहा। इस सफाई के साथ ही कागावा की वह छः फुट चौड़ी और छः फुट लम्बी कोठरी भी चली गई, पर अपने साथ वह छः महानगरों के गन्दे मोहल्लों को भी लेती गई।

कागावा की महान साधना और उनकी तपस्या के कारण ही यह सब संभव हुआ। अपने भाषणों के 'दो शब्द' में कागावा ने बड़ी मार्मिक बात लिखी थी : "मेरी पुस्तकों के पढ़ने वाले बहुतेरे हैं, पर पुस्तक लिखना ही मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं है। मैं तो एक सिपाही आदमी हूं और लोगों के अंतःकरण को जगाने के लिए आंदोलन करना ही मेरा काम है। मेरी किताबों में मेरी आत्मा रोती है और उसके रोने को जो कोई सुनता है, वही मेरा सच्चा मित्र है।"

कागावा व्यक्ति की स्वतंत्रता को बड़ा महत्त्व देते थे। उनके विचार से यह स्वतंत्रता तभी मिल सकती थी, जबकि इंसान अपने पैरों पर खड़ा हो। इस बारे में उनका कहना था :

"आदमी इतनी सादगी के साथ रहे कि उसे किसी दूसरे की सेवा न लेनी पड़े, अपनी सेवा वह स्वयं कर सके। यदि कोई आदमी अपने हाथ की बनाई झोंपड़ी में रहे, अपने हाथ से उसमें अपनी रसोई बनावे, अपने हाथ से उगाई तरकारियां खावे, अपने करघे पर बुना हुआ कपड़ा पहने और सादगी के साथ अपने घर का प्रबन्ध स्वयं करे तो उसे कितनी आजादी मिल सकती है।"

कागावा जिन्दगी भर दूसरों की सेवा में लगे रहे और अपने इस कथन को उन्होंनें सही सिद्ध कर दिया :

"दौड़ से आखिरी मील तक मैं चलता ही रहूंगा, बीच में बैठने का नहीं। रेल पर सफर करते हुए या सागर की यात्रा करते हुए मुझे परलोक से बुलावा आवेगा, मैं नहीं जानता। मेरा काम तो बराबर चलना है। बाकी सब ईश्वर के हाथ है।" □

मानव-अधिकारों के अमर योद्धा मार्टिन लूथर किंग

□

मन्मथनाथ गुप्त

४ अप्रैल १९६८ को मार्टिन लूथर किंग अपने मोटल की बालकनी से झांककर मित्रों से बातचीत कर रहे थे कि उन्हें गोली मार दी गई और वह तुरन्त मर गए। सारे संसार में हाहाकार मच गया, क्योंकि वह एक ऐसे नेता थे, जिसकी नैतिकता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता था। वह संयुक्त राष्ट्र अमरीका के काले लोगों की ओर से लड़ रहे थे कि उन्हें गोरों की तरह समान अधिकार दिये जायं। वह स्वयं उन्हीं लोगों में थे।

अमरीका के इन काले नीग्रो लोगों का एक दुख-दर्द-भरा इतिहास है। जब गोरों ने अमरीका को अपना उपनिवेश बना लिया (इसकी सफलता के कुछ ऐतिहासिक, कुछ आकस्मिक, कारण थे) तो उन्हें यह अनुभव हुआ कि प्राप्त विशाल भूमि का सम्यक रूप से दोहन-शोषण करने के लिए उन्हें मजदूरों की जरूरत है। उस समय तक संसार में दास-प्रथा किसी-न-किसी रूप में थी। इसलिए मांग हुई कि दास लाये जायं।

पर दास कहां से मिलते? तब-तक श्वेतांग लोगों में दास-प्रथा समाप्त हो चुकी थी। हां, अर्धदास (सर्फ) प्रथा अब भी, यानी १९वीं सदी के प्रारम्भ में, यूरोपीय देशों में थी। रूस में १८६१ में कानूनी रूप से अर्धदास-प्रथा का अन्त हुआ, यद्यपि वह प्रथा उसके बाद भी कई दशकों तक ज़ारी रही। अन्तिम रूप से रूस के गांवों में जमीन्दारों के अत्याचारों का अन्त १९१७ में हुआ।

हां, तो जब अमरीकी के विशाल भूमि के मालिकों को दास-किस्म के मजदूरों की जरूरत पड़ी, तो उसकी पूर्ति के लिए कुछ लोग आगे बढ़ आये। ये थे डाकू यानी सामुद्रिक डाकू या उनसे मिलते-जुलते जहाजों के मालिक। उस समय अफ्रीका बहुत पिछड़ा हुआ था। वहाँ की कोई खबर सभ्य जगत मे नहीं पहुँचती थी या पहुँचती थी तो भ्रष्ट और रंगे रूप में कि वहां के लोग खूंख्वार हैं, मर्दूमखोर हैं, उनमें किसी तरह की नैतिकता नहीं, वे मनुष्य के रूप में पशु हैं। कहा गया कि ऐसे लोगों को, यहां तक कि एशिया के सुसंभ्य लोगों को, सभ्य बनाने का काम श्वेतांग लोगों का है। इसका एक दर्शनशास्त्र बन गया, जिसको व्हाइट मैंस बर्डन यानी श्वेतांग जाति का नैतिक बोझ करार दिया था।

इसी श्वेतांग जातियों के बोझ का एक नग्न रूप अब सामने आया। वह यह था कि अफ्रीका के युवकों और युवतियों, बालकों और बालिकाओं को छल, बल, कौशल से पकड़ और उन्हें बांधकर अमरीका के जमीन्दारों के सिपुर्द करो। जिस प्रकार से लोग शिकार करते हैं, उसी प्रकार से अफ्रीका के समुद्र-तटों पर अपने जहाज खड़े करके बन्दूकों से लैस श्वेतांग सामुद्रिक डाकू अफ्रीका के गांवों की तरफ निकल जाते थे और बूढ़ों, बुढ़ियों, अपाहिजों के अतिरिक्त जो भी इनके पजों में आ जाता था, उस पकड़कर जहाज के नीचे के हिस्से में डाल देते थे। वहा उन्हें भूखा रखकर मारपीट कर हुक्म मानना सिखाया जाता था। फिर उन्हें अमरोका की दासमंडियों में ले जाकर बेच दिया जाता था। इस बीच मारपीट, बलात्कार, उपवास और सक्रामक रोगों के कारण आधे लाग मर जाते थे। उस जमाने मे अमरीका में यत्र-तत्र दास बेचने की मंडियां थीं, जिनको उसी प्रकार व्यापारियों और भद्र लोगों में मान्यता प्राप्त थी, जैसे आलूमंडी की होती है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि अति प्राचीन काल से लेकर सर्वत्र (भारत में भी) दासप्रथा एक जायज प्रथा मानी जाती थी। अरस्तू-जैसे महान चिन्तक, जिनसे पाश्चात्य राजनैतिक चिन्तन का बहुत-कुछ उद्भव माना जाता है, यह सोचते थे कि दासप्रथा समाज का जरूरी घटक है। भगवान बुद्ध दासों को अपने भिक्षुओं में शामिल नहीं करते थे, जबतक कि वे मालिकों द्वारा मुक्त करार न दिये जायं।

अमरीका मे दासप्रथा के इस नवीन संस्करण का कुछ ब्यौरेवार चित्र 'टाम काका की कुटिया' में मिल सकता है। उपन्यास की दृष्टि से भी यह पुस्तक बहुत रोचक है तथा साम्राज्यवाद का नंगा नाच और निर्लज्ज शोषण का भोंड़ा रूप प्रत्यक्ष कराता है। इधर इस दास-प्रथा पर बहुत शोध किया गया है, जिससे पता चलता है कि अमरीका की नीग्रो-समस्या का रूप कितना त्रिकट है। इस प्रकार मंगाये गए लोगों को यानी उनके वंशधरों को पता नहीं कि वे और उनके बाप-दादे या दादियां कहाँ से मंगाई गई थीं, उनकी भाषा या बोली क्या थी, उनका कोई धर्म था या नहीं। दूसरे शब्दों में, इन दासों पर भाषा, धर्म सभी कुछ मालिकों की ओर से लादा गया। दुःख की बात है कि आज ये इतने अमरीकीकृत हो गए हैं कि इन्हें अब अफ्रीका के लोगों से विशेष आत्मीयता का अनुभव नहीं होता।

तो यह वह माहौल था, जिसमें मार्टिन लूथर किंग का पालन-पोषण हुआ था। दास-प्रथा तो अमरीका में भी अब नहीं रही। दासों के वंशधर अब सभी दृष्टियों से शिक्षित नागरिक हो गए हैं, कानूनी रूप से उनकी और श्वेतांग नागरिकों की बराबरी मान ली गई है, फिर भी यह नही कहा जा सकता कि यह कानून द्वारा स्वीकृत बराबरी व्यावहारिक रूप में अधिक आ सकी है। उसके लिए बराबर सघर्ष चलता रहा है और उसमे अनगिनत लोग शहीद हुए हैं। काले गोरों का यह संग्राम अब भी जारी है और इस संग्राम में जाने कितने लोग शहीद हो चुके हैं। इन शहीदों में प्रातःस्मरणीय नाम है मार्टिन लूथर किंग का।

इस सम्बन्ध में एक अमरीकी संगठन क्लुक्लुक्स क्लैन का नाम उल्लेखनीय है। यह एक अपख्यात गुप्त समिति है, जिसका उद्देश्य नकाब पहनकर कालों का वध करना रहा है। जो भी काला व्यक्ति उस समिति को खतरनाक ज्ञात होता है, वह अपने नकाबपोश जल्लादों को भेजकर उसकी हत्या कर देती है। अक्सर यह अभि-

योग लगाया जाता है कि उस काले व्यक्ति ने किसी श्वेतांग युवती के साथ बलात्कार किया। आततायी अपने शिकार को वहाँ के श्वेत बाशिन्दों की सहायता से मारते-मारते मार डालते थे, जिससे 'लिंच' शब्द की उत्पत्ति हुई है।

मार्टिन लूथर किंग को पता था कि उन पर घातक हमले की तैयारी है। उन्होंने हत्या से २४ घंटे पहले कहा था :

"जैसा कि सभी चाहेंगे, मैं भी दीर्घजीवी होना चाहता हूं। पर इस समय मुझमें वह चाह भी नहीं। मैं तो अब यही चाहता हूँ कि मुझमें ईश्वर की इच्छा पूर्ण हो।

"ईश्वर ने मुझे पर्वत पर जाकर वह भूमि दिखा दी है, जिसे दिलाने का वादा उनकी तरफ से है। संभव है कि मैं आप लोगों के साथ उस प्रतिज्ञात भूमि में न पहुँच पाऊं, पर मैं चाहता हूँ कि आज रात को आप यह जान लें कि हम सब सामूहिक रूप से उस भूमि पर पहुंचेंगे ही। इस कारण आज मैं सुखी हूं। मुझे न किसी बात की चिन्ता है, न किसी व्यक्ति का डर है। मेरी आंखों ने प्रभु के आगमन का गौरव प्रत्यक्ष किया है।"

९ अप्रैल, १९६८ को अटलान्टा में उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया हुई। उसमें डेढ़ लाख जनता थी, जो अमरीका के लिए एक रिकार्ड है। वह कालों के आधुनिक मसीहा थे।

बचपन से ही उनको इस बात पर बड़ा दुःख था कि सब तरह से समान होते हुए भी गोरे कालों को समानता का दर्जा देने को तैयार नहीं। दक्षिण में तो इस विषमता की हद थी। उत्तर में निस्बतन कुछ समता थी। अमरीकी इतिहास में दासता के प्रश्न को लेकर उत्तर-दक्षिण में गृहयुद्ध हुआ था, जिसमें सौभाग्य से उत्तर ही यानी संघ सरकार की जीत हुई, नहीं तो फासिस्टवाद का उदय उसी समय होता। अब्राहम लिंकन की हत्या भी इसी सिलसिले में हुई। वह हृदय से विश्वनागरिक थे।

मार्टिन लूथर किंग को नौजवानी में ही रंगभेद का कई बार शिकार होना पड़ा। एक बार सिनेमा गए तो वहाँ श्वेतांगों से अलग 'पीनट गैलरी' में यानी मूंगफली के छिलकों में कुर्सी डाल कर चित्र देखना पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि उनका मन चित्र पर नहीं जमा। वह यही सोचने लगे कि कैसे इस हीन अवस्था से कालों की मुक्ति कराई जाय। एक दूसरे अवसर पर वह एक रेस्तरां में खाने गए तो उनको पर्दे के अन्दर बैठना पड़ा। नौकरियों में भी गुण होने और सारी शर्तें पूरी करने पर भी कालों को स्थान नहीं मिलता। यह स्थिति अब भी है यद्यपि महायुद्धों में काले गोरों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर लड़े और मरे।

मार्टिन अभी सोच ही रहे थे कि कैसे क्या किया जाय कि वह मोर्डकाई जानसन नामक व्यक्ति का व्याख्यान सुनने पहुंच गए, जो अभी भारत से लौटे थे। जानसन ने महात्मा गांधी के विषय में बहुत कुछ कहा। बस, उनकी आंखें खुल गई। व्याख्यान सुनकर लौटे तो वहां गांधी पर जितने भी ग्रन्थ मिले, खरीद डाले। उन्होंने सोच लिया, अहिंसा ही कालों की नीति होनी चाहिए। गान्धी का उद्धरण देते हुए वह बोले, "संभव है, हमें स्वतंत्रता तभी मिले, जब खून की नदियां बहें, पर यह खून हमारा खून होगा।" इसी वाक्य को मंत्र बनाकर उन्होंने गोरों के मद और मत्सर के विरुद्ध एक विराट आन्दोलन खड़ा कर दिया। बहुत से गोरे शरीफ लोग उनके साथ हो गए। उनके निष्कलंक संग्राम के विरुद्ध गोरे भड़क गए, क्योंकि वे उनके खिलाफ कुछ कह नहीं पाए। इसी का नतीजा यह हुआ कि उनको गोली मार दी गई। इसके बाद उन्हें शहीद की मर्यादा से वंचित करने के लिए कथित स्वतंत्र पत्रकारिता ने उनके चरित्र पर दोष लगाना चाहा, पर सारे संसार ने घृणा के साथ उन अभियोगों को काल्पनिक बताया।

उनकी शहादत के बाद एक दशक होने जा रहा है। नौजवान नीग्रो कहते हैं, अहिंसा से कुछ नहीं होगा। इस लिए कुछ लोग दूसरे तरीके अपना रहे हैं। जो हो, मार्टिन लूथर किंग जिस उद्देश्य को लेकर शहीद हुए, वह अवश्य पूरा होगा।—

समर्पित व्यक्तित्व म्यूरियल लीस्टर

□

यशपाल जैन

कुमारी म्यूरियल लीस्टर का नाम मैं पहले सुन चुका था। गांधीजी के महान् व्यक्तित्व और प्रेम से खिचकर जो भाई-बहन उनके रास्ते के निष्ठावान पथिक बन गये, उनमें एक बहन यह भी थीं। वह कई बार भारत आईं और गांधीजी के पास रहीं। जब गांधीजी दूसरी गोलमेज परिषद में शामिल होने लंदन गये तो बड़े-से-बड़े लोगों के निमंत्रणों को ठुकराकर वह इन्हीं बहन के साथ गरीब मजदूरों की बस्ती में ठहरे।

अपने लंदन-प्रवास में मुझे कुछ समय म्यूरियल के साथ बिताने का अवसर मिला। उसकी याद बीस बर्ष बाद आज भी मेरे मन पर ताजी बनी है।

दुबला-पतला शरीर, पर बेहद फुर्तीला, सौम्य-शान्त चेहरा, प्रेमल स्वभाव, बहुत ही सादी पोशाक—यह थी म्यूरियल। निश्च्छल हृदय,लंदन से कोई ४० मील दूर उनके छोटे-से मकान के ड्राइंग रूम में बैठते ही गांधीजी की चर्चा छिड़ गई। वह बोलीं, "सबसे पहले मैं गांधीजी से सन १९२६ में मिली थी। उस समय एक महीने उनके साथ साबरमती आश्रम में रही। उन दिनों की एक-एक बात मुझे आज भी याद है। कितना ऊंचा था गांधीजी का व्यक्तित्व, कितना व्यापक था उनका प्रेम! मैं दूर देश से वहां गई थी, कोई परिचित भी नहीं था। लेकिन एक क्षण के भीतर ही मुझे लगा कि मैं घर में और घरवालों के बीच हूं।"

कहते-कहते उनकी आंखें चमक उठीं, चेहरा दमक उठा, जैसे एक बार फिर वह गांधीजी के पास पहुंच गई हों।

उनके यहां कोई नौकर नहीं था। घर का सारा काम वह और उनकी छोटी बहन डारिस मिलकर करती थीं।

हम लोग चार घंटे साथ रहे। दोनों बहनों के असामान्य संयम की झलक उनके चेहरे पर दिखाई देती थी। म्यूरियल ७३ वर्ष की थी, पर उनका एक भी दांत नहीं उखड़ा था। डारिस ७० वर्ष की थीं और अपनी बहन की तपस्या में गहरी निष्ठा से योग देती थीं। म्यूरियल की निश्च्छल हंसी और उनके चेहरे का तेज आज भी मुझे विभोर कर देता है।

हम लोगों ने विदा मांगी तो म्यूरियल ने मुझे अपनी दो पुस्तकें भेंट में दीं। एक थी 'गांधीजीज सिगनेचर', जिसमें उन्होंने गांधीजी के अपने संस्मरण दिये थे। दूसरी थी उनकी आत्मा-कथा—'इट अकर्ड टू मी।' इस पर दोनों बहनों ने अपने हस्ताक्षर किये। कितनी सादगी और उच्चता थी उनमें।

इसके बाद एक शाम हम लोगों ने फिर साथ बिताई, जबकि वह मुझे अपनी संस्था किंग्स्ले हॉल दिखाने ले गईं, जहां गांधीजी ठहरे थे।

म्यूरियल का जीवन प्रारम्भ से ही वैभव से विमुख रहा था। उनके पिता जहाज बनाने की एक कंपनी में काम करते थे और अत्यन्त परिश्रमशील थे। उनके पास पैसे की कमी न थी। वे लोग लंदन से दूर एसेक्स में एक साफ-सुथरे मोहल्ले में रहते थे, लेकिन शहर आते-जाते उन्हें उस पूर्वी बस्ती से गुजरना पड़ता था, जहां गरीब लोग रहते थे और गंदगी की जिन्दगी बसर करते थे। म्यूरियल जब आठ वर्ष की थी तो एक दिन किसी पार्टी से अपनी नर्स के साथ लौट रही थीं। अचानक उनकी निगाह पूर्वी लंदन के मकानों पर गई, जो बड़े गंदे दिखाई दे रहे थे, जिनसे बदबू आ रही थी और जिनके इर्द-गिर्द बाग-बगीचों का नाम-निशान तक न था। म्यूरियल के लिए ऐसे मकान अकल्पनीय थे। उन्होंने बाल-सुलभ विस्मय से अपनी नर्स से पूछा, "क्या इन मकानों में आदमी रहते हैं?"

नर्स ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं, इनमें बहुत-से आदमी रहते हैं।"

संभवत: नर्स को सूचना थी कि वह बच्चों को ऐसी

किसी बात की जानकारी न होने दे, जिससे उन्हें बुरा लगे या दुःख पहुंचे। अतः नर्स ने आगे कहा, "पर तुम इसकी चिन्ता न करो। इन मकानों में रहनेवाले लोगों को जरा भी हैरानी नहीं होती। वे खूब खुश रहते हैं।"

कुछ समय बाद फिर म्यूरियल का ध्यान उस ओर गया और उन्होंने अपने प्रश्न को दोहराया। इस बार उत्तर मिला, "ये लोग बड़े मस्त हैं। यहां की गंदगी इन्हें बिल्कुल नहीं अखरती। अखरे भी तो क्या, आखिर यही लोग तो इसके लिए जिम्मेदार हैं। ये शराब में अपना पैसा उड़ा देते हैं। इसी से गरीब हैं।"

म्यूरियल ज्यों-ज्यों बड़ी होती गईं, उनके मन में यह विचार घर करता गया कि गरीब लोगों के रहन-सहन को कैसे ऊपर उठाया जाय और उनके जीवन में कैसे सुधार किया जाय। यही विचार धीरे-धीरे पल्लवित होता गया और आगे चलकर उसने उनकी जिन्दगी को एक नयी दिशा में मोड़ दिया।

म्यूरियल पांच भाई-बहन थे। दो बड़ी बहनों का विवाह हो गया था। म्यूरियल और उनकी छोटी बहन डारिस आजन्म अविवाहित रहीं। उनके एक ही भाई था किंग्स्ले। वह सबसे छोटा था। म्यूरियल उसे बेहद प्यार करती थीं। वह अपनी आत्म-कथा में लिखती हैं, "मुझे इस बात का बड़ा डर लगा रहता था कि कहीं किंग्स्ले बड़ा होकर शराब न पीने लगे, बुरी सोहबत में न पड़ जाय और कहीं वह भगवान को न बिसरा दे। जब वह कैम्ब्रिज में पढ़ने जाने को था तो न जाने किन-किन बुराइयों की कल्पना करके मैं परेशान होने लगी। अन्त में टालस्टाय ने मेरा उद्धार किया। किसी के घर में मुझे टालस्टाय की एक पुस्तक मिली 'स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्तर में है।' उस पुस्तक ने मेरे जीवन के मूल्य ही बदल दिये। उसमें ईसा के इन शब्दों पर 'किसी के काजी मत बनो' एक लम्बा अध्याय था। जब मैंने उसे मनोयोगपूर्वक पढ़ा तो चिन्ता पैदा करने वाले विचारों का बोझ मेरे मन पर से उतर गया। मैंने अनुभव किया कि जबतक किंग्स्ले या कोई दोस्त जिसे सही मानता है, उस रास्ते पर चलता है, मुझे उनको आदर देना चाहिए।"

आगे वह लिखती हैं, "उस किताब में एक और अध्याय था—'चिन्ता न करो', उसे पढ़कर मैंने उन परंपराओं, आकांक्षाओं, आडम्बरों तथा भयों का सदा के लिए तिलांजलि देने का निश्चय कर लिया, जो हमारे अन्दर संघर्ष पैदा करते हैं।"

म्यूरियल के पिता बड़े ही धर्म-परायण व्यक्ति थे, लेकिन उनका धर्म कर्मकाण्ड तथा रूढ़ियों से आबद्ध नहीं था। वह अपनी वाणी, कर्म तथा लेखनी से यह दिखाने का बराबर प्रयत्न करते थे कि ईश्वर का सारतत्व प्रेम है। वह बाइबिल की कथा-कहानियों की ओर विशेष ध्यान दिया करते थे और हर रविवार को अपने बच्चों को वैसी कहानियां सुनाया करते थे।

अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद म्यूरियल को सेवा की धुन सवार हुई। वह अवसर मिलते ही पूर्वी लंदन की गंदी बस्ती में पहुंच जातीं और वहां के लोगों की जो कुछ सेवा कर सकतीं, करतीं।

सन् १९१० में वह अपने माता-पिता के साथ फिलिस्तीन गईं। उन्हें बताया गया था कि धर्म-स्थानों की हालत बड़ी बुरी है। लेकिन उनकी भयंकरता का अनुमान वह पहले नहीं लगा सकी थीं। जब वह बैथलहैम और जैरूसलम पहुंची और वहां के गिरजों की जीर्णता, दीवारों का उखड़ा पलस्तर और कीलों पर लगी जंग देखी तो उन्हें बड़ी चोट लगी।

लंदन लौटकर वह पुनः सेवा-कार्यों में जुट गईं। उनका और उनकी छोटी बहन डारिस का अब प्रायः पूर्वी लंदन की 'बो' नामक बस्ती ही प्रमुख कार्य-क्षेत्र बन गई। इसी बीच उनके भाई किंग्स्ले का मन अपने व्यवसाय से उचटा और वह भी सन् १९१२ में अपनी बहनों के साथ आ मिला। तीनों ने मिलकर 'बो' बस्ती में एक मकान भाड़े पर ले लिया, लेकिन उन्होंने कुछ ही दिन काम किया कि किंग्स्ले को एपेंडिसाइटिस की शिकायत हो गई, जो उनके लिए प्राण-घातक सिद्ध हुई। छब्बीस वर्ष की उम्र में उस इकलौते भाई का देहान्त हो गया।

म्यूरियल को बड़ी पीड़ा हुई, पर उन्होंने उस दुःख में से शक्ति उत्पन्न की। उन्हें किंग्स्ले के कार्य को आगे बढ़ाना

था। वह और डारिस पूरी लगन और उत्साह से समाज के पिछड़े वर्ग को समुन्नत करने में लग गईं। किंग्स्ले के पास कुछ पैसा था। मरते समय वह लिखकर छोड़ गया कि उस पैसे को म्यूरियल और डारिस काम में लावें और उससे जो आमदनी हो, वह 'बो' के निवासियों की सेवा में खर्च की जाय।

एक दिन म्यूरियल के पिता ने कहा, "सेवा के लिए किसी सार्वजनिक स्थान का निर्माण करने से बढ़कर किंग्स्ले का कोई भी स्मारक नहीं हो सकता। अगर कोई मौके की अच्छी जगह हो तो मुझे बताओ। मैं उसे तुम दोनों बहनों के लिए खरीद दूंगा।"

इधर-उधर ढूंढ़ने के पश्चात् उन्हें एक हाल मिला, जो खाली पड़ा था। वस्तुतः वह एक चैपल था। उसी को खरीद लिया गया और इस प्रकार सन् १९१५ में 'किंग्स्ले हाल' की स्थापना हुई। किसी भी संस्था को जन्म देना बड़ा आसान होता है, लेकिन चलाना बड़ा कठिन होता है। उसके लिए भारी साधना की आवश्यकता होती है। म्यूरियल एक स्थान पर लिखती हैं :

"किसी विचार को ईंट और चूने का जामा पहनाने में बहुतों को निराशा हो सकती है। अपनी नयी संस्था के लिए हम लोगों ने बड़ी मेहनत की। हमारे पास कुछ भी ऐसा न था, जिस पर हम गर्व कर सकते, पर जिस तड़प ने किंग्स्ले हाल की स्थापना कराई थी, वह कभी खत्म नहीं हो सकी। हमें बड़े-बड़े अनुभव प्राप्त हुए—असफलता के, आनन्द के, प्रेम के और खतरे के।"

प्रारंभ में इस संस्था की मुख्य प्रवृत्ति थी संध्या को लोगों का वहां एकत्र हो जाना और स्वस्थ मनोरंजन में कुछ समय व्यतीत करना, लेकिन इतने भर से म्यूरियल को कहां संतोष होने वाला था! उन्होंने अपनी प्रवृत्तियों में वृद्धि की। वह तो उसे एक ऐसी संस्था का रूप देना चाहती थीं, जहां सामान्य स्थिति के लोग बिना वर्ण, वर्ग तथा विश्वास के भेद के रहें और सचाई की जिन्दगी बितायें।

'बो' का वह स्थान छोटा पड़ने लगा तो उन्होंने पाविस रोड पर एक बड़ी जगह ली। वहां म्यूरियल और कुछ अन्य व्यक्ति मिलकर सारा काम स्वयं करते। कोई फर्श की सफाई करता, कोई खाना पकाता। उन्होंने कोई भी काम एक व्यक्ति को नहीं सौंपा। जिसे जो काम पड़ा दीखता, वह उसी को करने में लग जाता। "हमारे सामने एक दृष्टि थी", म्यूरियल लिखती हैं, "और वह यह कि हमें सबसे पहले ईश्वर की सेवा करनी है, फिर किंग्स्ले-हॉल की व्यवस्था करनी है। उसके बाद कहीं आती है हमारी निजी मर्जी।"

वे लोग सवेरे ठीक ६ बजकर ५० मिनट पर रसोई में पहुंच जाते थे। उनका हर काम इतनी नियमितता से होता था, जितनी नियमितता से कारखाने के मजदूर अपना काम करते हैं। म्यूरियल लिखती हैं, "हम इस पूंजीवादी सिद्धान्त को भ्रामक सिद्ध करना चाहते थे कि निजी लाभ और बर्खास्तगी के डर से ही अच्छा काम कराया जा सकता है। वे लोग सारा काम स्वेच्छा से करते थे। उनके सामने न पैसे का लालच था, न यह डर कि वे अपना काम ठीक से नहीं करेंगे तो कोई उन्हें वहां से निकाल बाहर करेगा।"

इस प्रकार की निष्ठा बिना किसी प्रार्थना के कैसे संभव हो सकती थी? सुबह-शाम की मौन-प्रार्थना उनकी दैनिक चर्या का अभिन्न अंग बनी।

नये स्थान की इमारत म्यूरियल तथा उनके साथियों को अनुकूल नहीं मालूम होती थी। अतः उसे गिराकर नई इमारत बनाई गई। उसका प्रत्येक भाग जीवन तथा धर्म के प्रति म्यूरियल के दृष्टिकोण के किसी-न-किसी पहलू का प्रतिनिधित्व करता था।

इस किंग्स्ले-हाल का सितम्बर १९२८ में उद्घाटन हुआ। यही वह संस्था थी, जिसके आतिथ्य को गांधीजी ने द्वितीय गोलमेज परिषद् के अवसर पर स्वीकार किया। सन् १९३१ में वह तीन महीने इसी किंग्स्ले हाल में ठहरे।

इस संस्था के द्वारा म्यूरियल ने सामान्य लोगों की जो सेवा की, वह अद्भुत थी। उसमें कुछ लोग स्थायी रूप से रहते थे और सारा काम अपने हाथ से करते थे। वहां न कोई नौकर था, न मालिक। सब एक परिवार के

सदस्यों की भाँति रहते थे। अपनी निःस्वार्थ सेवा, सादगी तथा सचाई से इस संस्था ने बहुत से सम्मानित व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट किया। वहाँ के नर्सरी स्कूल में पढ़े बहुत-से बच्चे आगे चलकर ऊंचे ओहदों पर पहुँचे। सबसे बड़ी सेवा उसने यह की कि हीन दृष्टि से देखे जाने वाले उस इलाके के स्त्री-पुरुषों के हृदयों में आत्मीयता, साहस और करुणा की भावना पैदा हुई। जो लोग भयंकर बुराई करने के लिए आमादा रहते थे, उनके जीवन को इस असामान्य महिला ने एकदम बदल दिया। उन्होंने दुनिया को दिखा दिया कि प्यार के आगे पत्थर भी मोम हो जाता है।

लंदन की भौतिकता के लिए म्यूरियल लीस्टर का जीवन और किस्ने हाल की प्रवृत्तियां निःसन्देह एक चुनौती थीं और साथ ही एक चेतावनी भी कि इस संसार में सब कुछ क्षणभंगुर है। यदि कुछ अजर-अमर है, तो वह प्रेम है और उसी पर चलकर और ढलकर इसी पृथ्वी पर स्वर्ग की कल्पना साकार हो सकती है।

वस्तुतः म्यूरियल की शक्ति का स्रोत था प्रेम से छलछलाता उनका हृदय, दीन-दुखियों की निस्स्वार्थ सेवा-भावना और सर्वहितकारी दृष्टि। वह धनिक घर की थीं, उनमें ऊंचे-से-ऊंचे पद पर आसीन होने की योग्यता थी, पर उन्होंने स्वेच्छा से गरीबी और सादगी की जिन्दगी अपनाई और गहरी भावना के साथ मानवता की सेवा करती रहीं।

व्यक्ति आता है, चला जाता है, भौतिक काया किसी की सदा नहीं रहती, लेकिन जो मानवता की सेवा करते हैं, दीन-दुखियों के काम आते हैं, सबके साथ प्रेम का व्यवहार करते हैं और अपने स्वार्थ को त्याग करके दूसरे के हित को सम्मानित करते हैं, उनकी याद को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

म्यूरियल लीस्टर आज हमारे बीच नहीं हैं पर उन्होंने वैभव के जीवन को त्याग कर समाज के दीन, दलित और साधनहीन वर्ग की जो सेवा की, वह चिर-स्मरणीय रहेगी। □

मानवता का नन्दा दीप रविशंकर महाराज

□

काशिनाथ त्रिवेदी

आज से कोई ९४ वर्ष पहले गुजरात के खेड़ा जिले की मातर तहसील के रढ़गाँव में संवत् १९४० की महाशिवरात्रि के दिन, यानी २५ फरवरी, १८८४ के दिन, श्री शिवराम पीताम्बर व्यास के घर में जिस शिशु का जन्म नाथीबाई की कोख से हुआ, वही शिशु आज ९४ वर्ष की अपनी उमर में सारे गुजरात में और सारे भारत में 'रविशंकर महाराज' के नाम से जाना-माना जाता है। इन्हीं रविशंकर महाराज को कुमारी विमलाबहन ठकार ने मानवता का 'नन्दा दीप' कहा है। महाराज की चर्चा करते हुए विमलाबहन ने लिखा है:

"क्या आपने कभी पूज्य महाराज की आंखों में झांक कर देखा है? कभी उनकी निरअहंकारी मधुर मुस्कान का अमृत आपने पिया है? कभी उनकी विनम्र ऋजुता की सदेह मूर्ति का आन्तरिक ऐश्वर्य अपनी खुली आंखों से निहारा है? कभी उस जंगम तीर्थराज की चरणरज में आपने स्नान किया है? जबतक आपने यह न किया हो, तबतक 'रविशंकर' नाम की मूर्तसार्थकता का बोध आपको होगा ही नहीं।

"रवि के समान भेदक दृष्टि और शंकर के समान निखिल विश्व का मंगल करने वाली वृत्ति! अहो, कैसा मधुर यह संयोग है। बुद्धि की तीव्रता के साथ करुणा का यह संवाद कितना अपूर्व है।

"मैं जब-जब भी उनसे मिलती हूं, तब-तब गंगा-स्नान की-सी शुचिता लेकर ही लौटती हूँ। विनय के अमृत का पान करके लौटती हूँ। निरअहंकारिता का प्रकाश पाकर लौटती हूं। गुजरात धन्य है, जहां मानवता का यह नन्दा दीप इतने वर्षों से प्रज्वलित है।"

इन्हीं रविशंकर महाराज के बारे में सन् १९४४ में आभाबहन के साथ बातचीत करते हुए गांधीजी ने कहा था:

"बस, महाराज की यही खूबी है ! उन्हें जो भी काम सौंपा जाता है, उसमें वे अपनी आत्मा उंडेल देते हैं। यही कारण है कि उनका काम जगमगा उठता है, और उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।"

इन्हीं रविशंकर महाराज के विषय में विनोबाजी ने अलग-अलग प्रसंगों पर अपने जो उद्गार प्रकट किये हैं, उनसे महाराज के जीवन के कई उज्ज्वल पहलू हमारे सामने खड़े होते हैं। कुछ बानगी नीचे चखिए:

"महाराज का तो जप और तप निरन्तर चलता ही रहता है। मनु महाराज ने कहा है कि वैसे तो सिद्धि के लिए ब्राह्मण का केवल जप ही पर्याप्त होता है। ऐसी स्थिति में जब जप के साथ तप भी जुड़ा हो, तो फिर सवाल ही क्या रहता ?...रविशंकर महाराज तो कारुण्य-मूर्ति हैं। वे करुणा से प्रेरित होकर सतत काम करते रहते हैं। यह काम वे स्वर्ग में जाने के लिए पुण्य-संग्रह करने के विचार से नहीं करते। उनके लिए यह सारा कर्म सहज ही है।

"पर दुःखे उपकार करे, तोये मन अभिमान न आणे रे !"

"जब से मैंने सूक्ष्म में प्रवेश किया है, तब से ऐसा एक भी दिन नहीं बीता है, जब मुझे महाराज का स्मरण न हुआ हो। मेरे पास ३०-४० वृद्धों की एक सूची है। इस सूची में लिखा हुआ रविशंकर महाराज का नाम कभी भूला गया हो, ऐसा हुआ ही नहीं।

"महाराज का प्रभाव इतना व्यापक है कि उनके जाने के बाद भी उनका यह प्रभाव बना रहेगा। वे निरन्तर सेवा-परायण हैं। सेवा के अलावा वे अपने लिए और कुछ चाहते भी नहीं हैं। सारे देश में उनकी-सी योग्यतावाला दूसरा कोई व्यक्ति किंचित ही दिखाई पड़ता है। रविशंकर महाराज अत्यन्त निरपेक्ष, भक्तिपरायण और सेवा-परायण व्यक्ति हैं। वे हरएक की सेवा के लिए सदा तत्पर रहते हैं। उनकी गिनती सदा दास में होती है। हमेशा सबके दास ! सीधे पढ़ो या उल्टे पढ़ो, शब्द एक ही बनेगा—सदादास ! रविशंकर महाराज को यह बात बहुत प्रिय है।"

श्री काकासाहेब कालेलकर ने महाराज के बारे में लिखा है :

"मैंने निस्पृह और प्रेमल, निरहंकारी और सेवापरायण, संस्कृति-वीर रविशंकर महाराज की भव्यता के दर्शन किए हैं। ऐसी अनासक्त प्रेममूर्ति ही संस्कृति को ऊपर उठा सकती है। वे साधारण में से असाधारण बने हैं, फिर भी वे अपनी साधारणता छोड़ना ही नहीं चाहते। उनकी विशेषता यह है कि अपने इस आग्रह में सफल होने की कुंजी भी उनके हाथ में आ चुकी है। उन्होंने मनुष्य के मन का और जीवन का पृथक्करण करने की कला सिद्ध की है। और, सेवा के लिए वे अपनी इस कला का उपयोग करते हैं। उन्हें मनुष्य-स्वभाव का और सामाजिक परिस्थितियों का गहरा ज्ञान है। रविशंकरदादा गृहस्थ हैं। लेकिन उनका गृहस्थाश्रम भारत के परमार्थ-परायण अनेक सन्तों के गृहस्थाश्रम के समान है। उनकी अनासक्ति इतनी स्वाभाविक और सहज है कि देखनेवाले को पता भी नहीं चलता कि उसके मूल में तपस्वी सन्तों की संस्कृति काम कर रही है।"

सन् १९२८ में गुजरात के सूरत जिले की बारडोली तहसील में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में तहसील के किसानों ने उस समय की अंग्रेज सरकार के अन्यायपूर्ण निर्णयों के विरोध में जो सत्याग्रह किया था, उसके चलते जब सरकार ने रविशंकर महाराज को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया, तो महाराज की गिरफ्तारी की चर्चा करते हुए सरदार ने उनके बारे में कहा था :

"हजारों राह भूले लोगों का जीवन सुधारनेवाले, मुझसे कहीं अधिक पवित्र इस ऋषि को गिरफ्तार करके सरकार मानती होगी कि इससे मेरे पंख कट जायंगे। सरकार मेरे पंख काटना चाहती है, लेकिन मेरे तो अनगिनत पंख हैं।"

गुजरात के वयोवृद्ध लोकसेवक और प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्री जुगतरामभाई दवे ने महाराज के विषय में अपनी भावना इन शब्दों में व्यक्त की है :

"महाराज बचपन में अपने माता-पिता के, जवानी में स्वामी दयानन्द सरस्वती के, प्रौढ़ावस्था में सरदार वल्लभभाई और बापू के भक्त रहे और आज की अपनी उत्तरावस्था में वे सन्त विनोबा के भक्त हैं। उनके आशीर्वाद से

हम भी अपने जीवन को सन्तों और महात्माओं की भक्ति से सदा समृद्ध बनायें।

गुजरात के प्रसिद्ध साहित्यकार और राष्ट्रीय कवि स्व० झवेरचन्द मेघाणी ने महाराज के साथ हुई अपनी पहली भेंट की चर्चा करते हुए लिखा है :

"महाराज को मैंने पहली बार अहमदाबाद के कांग्रेस कार्यालय के फुटपाथ पर खड़ा देखा था। दुबली-पतली और तनी हुई कायावाली वह मानवमूर्ति, जो सरदी-गरमी में सतत घूम-घूमकर तांबे की तरह दमकनेवाली बन गई थी, किसी कुशल शिल्पी की सुन्दर कृति-सी लगती थी। स्वच्छ धोती, स्वच्छ ब्राह्मण बण्डी और पीली टोपी के साथ नंगे पैरों खड़ी वह मूर्ति ऐसी शोभा दे रही थी कि वह मेरे मन में सदा के लिए बस चुकी है। उस दिन वे मुझे ऐसे दिखाई पड़े थे, मानो दंगे में मारे गए निर्दोष लोगों के मुर्दों को जला-जलाकर लौटने के बाद वे हाल ही नहाकर आए हों! उस दिन फुटपाथ पर खड़े-खड़े उन्होंने जिस मन्द-मन्द मुस्कान के साथ एक-दो मिनट तक अपनी करुणाभरी आंखों का अमृत मुझ पर बरसाया, उसमें तो मैं आज भी नहा रहा हूँ।

इन्हीं मेघाणीजी ने 'माणसाईना दीवा' (मानवता के दीये)* नामक अपनी अतिप्रसिद्ध पुस्तक में बागियों के साथ की महाराज की एक मुठभेड़ का नीचे लिखा जो शब्द-चित्र अंकित किया है, उससे हमें उनकी निर्भयता के साथ ही जीवन-निष्ठा का भी पता चलता है।

"खबरदार! वहीं खड़ा रह, नहीं तो गोली से उड़ा दिया जायगा।" मुसाफिर ठिठक कर रुक गया।

सामने से फिर सवाल आया, "तू कौन है ?

मुसाफिर ने जवाब दिया, "मैं एक बागी हूं।

"किसकी टोली का है ?"

"महात्मा गांधी की टोली का।

"यहाँ क्यों आया है ?"

"तुम्हें सच्ची बगावत की रीति सिखाने आया हूं। तुम्हारी इस मामूली-सी बगावत से कोई बात बनेगी नहीं। अगर तुम्हें सच्ची बग़ावत करनी है, तो मेरे साथ महात्मा गांधी के पास चलो!"

रविशंकर महाराज तो साक्षात अभयमूर्ति थे, परन्तु उनके साथ में थी आफत की पुड़िया—देदरड़ावाला भीखा। दोनों चुपचाप बोरसद से कावीठा की सीमा पर पहुँचे। रात का पहला पहर तो बीत ही चुका था, दूसरा भी बीतने को था।

गांव की सीमा पर पहुंचकर जवान भीखा ने कहा, "आप यहां बैठें, मैं उसे लिवा लाता हूं।"

महाराज मन में चौंके—"अरे! यह तो अकेला जाना चाहता है।" बोरसद की हवालात, ब्राह्मण अधिकारी, उसका सौंपा गया उसके जीवन का सर्वस्व, इस नौजवान डाकू का अनजान जीवन, उसकी अपरिचित मनोदशा—इन सबकी सकलित चित्रमाला उनके मानस-पटल पर से चमकती हुई सपाटे-से निकल गई। पर अपनी आशंकाओं को झट दबाकर उन्होंने उत्तर दिया, "जाओ!"

कुछ भी कहे बिना भीखा महाराज को छोड़कर चला गया।

थोड़ी देर बाद भीखा लौटकर आया तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह पृथ्वी में से प्रकट हुआ है। वह चोर था, कैदी था, गुप्त कार्य करने के लिए आया था, पैर की जरा भी आवाज हो तो वह पाटणवाडिया नहीं।

पर वह आया अकेला था।

महाराज ने उससे कुछ पूछा नहीं। भीखा को ही बोलने दिया।

"मालूम होता है, वह तो मेरे गांव देदरड़ा गया है।"

"अच्छा!" और महाराज ने कुछ नहीं कहा।

"हम वहां चलेंगे ?" भीखा ने पूछा।

"चलो।

इतना कहकर महाराज चलने लगे, मानो भीखा संचालक हो और वह स्वयं उसके हाथ का यन्त्र हों। उन्होंने अपने-आपको डाकू के हाथ में सौंप दिया था।

---

*लेखक, झवेरचंद मेघाणी, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, मूल्य ४.५० रु.।

पक्षी ऊंचे हवा में अनायास ही तैरता है, उसी प्रकार ब्राह्मण की आत्मा किसी उन्नत दिगंत में मस्त परों पर लहरा रही थी। भीखा आगे नहीं, उनके पीछे-पीछे चल रहा था। चार कोस के रास्ते में ब्राह्मण ने एक बार भी पीछे फिरकर नहीं देखा। दोनों में से किसी के भी पैर में जूते नहीं थे। दोनों की जबान और पैर निःशब्द थे। एक चोर था और दूसरा ब्राह्मण, परन्तु थे दोनों संयमी।

देदरडा की सीमा पर रात के तीसरे पहर में वे जा पहुंचे। यहां पैरो पर बन्धन की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि भीखा का अपना घर वहां था। भीखा ने महाराज से कहा :

"महाराज !"

"क्या है ?"

"आप मेरे घर न आयें।"

"तो क्या करूं ?"

"यहां, गांव के बाहर बैठें।"

"अच्छा, जाओ।"

निर्जन सरकारी चबूतरे पर महाराज बैठ गए और बैठे रहे। वह यह देख रहे थे कि आगे क्या होने वाला है। थोड़ी देर में युवा कैदी लौट आया और महाराज को जगत जीने योग्य जान पड़ा। पर उसी समय विश्वास के मूल को भी हिला देने वाली वाणी भीखा के मुंह से निकल पड़ी।

"महाराज मालूम होता है, वह तो मेरे खेत पर गया है। घर पर नहीं है।"

"अच्छा, तो खेत पर जाओ।"

ये शब्द उनके मुंह से निकलने की देर थी कि कैदी चल पड़ा।

महाराज मानो अपने प्राणों से खेल रहे थे। दाव पर रखने के लिए अब कुछ बाकी न रहा था।

थोड़ी देर में भीखा वापस आया। बोला, "वह तो खेत पर से भाग गया है।"

"अच्छा !"

फिर भीखा बोला, "तो अब क्या करें ? चलो, बोरसद लौट जायं।"

रात के दो बजे होंगे। महाराज ने अंदाज लगाया कि यदि पांच बजे चलेंगे तो सुबह अन्धेरे-अन्धेरे पहुंच जायंगे। फिर उन्होंने स्वयं भीखा से कहा, "तुम थक गए होगे। कहो तो यहीं सो रहें।"

"कहां ?"

तुम अपने घर जाकर सो जाओ। मैं...नाई के घर जाकर सो जाऊंगा। तुम सुबह जल्दी आ जाना।"

"अच्छा।"

नाई के घर पर महाराज ने जो तीन घण्टे नींद ली, वह दूसरे दिनों की अपेक्षा भिन्न नहीं थी। वह गहरी नींद सोये थे। बिना स्वप्न की उनकी वह निद्रा थी। विश्वास का तकिया था। सम्भवतः हृदय में अमृत सींचने वाला भी ऐसा कोई भाव भरा था कि भीखा के स्त्री-बच्चों को आज एक सुख की रात नसीब हुई थी—ऐसी रात न मालूम कितने साल तक उसे फिर नसीब न हो।

प्रभात की किरण अभी फूटी नहीं थी। अन्धेरा जैसा का-तैसा था, पर बोरसद का ब्राह्मण अमलदार दरवाजा खोले राह देख रहा था। उसके भाग्य की तराजू उस दिन भगवान के हाथों में थी। जैसे ही उसने उन दोनों को आते दूर से देखा, उसे बेहद खुशी हुई, मानो उसे सांध्य-अंधकार में भी दिवाकर के दर्शन हुए हों। चमत्कार की बात तो यह थी कि वे दो थे, पर रास्ते में तीन हो गए थे। लेकिन तीसरा खेडिया कावठीवाला नहीं था, शंकरिया था। शंकरिया भी उस दिन तड़के ही अपने गांव से अपने को सौंप देने के लिए हाजिर हो गया था। खोडिये का यह गुनहगार साथी था।

कैदी सकुशल लौट आया, इसका हर्ष अधिकारी किस प्रकार प्रकट करे। अपने भावों को दबाने का उसके पास कोई उपाय न था। घर में जाकर हर्षावेश में अपनी घरवाली से कहा, "चाय तैयार करो जल्दी।"

उन दोनों कैदियों को अपने पास बिठाकर उसने चाय पिलाई। खुद भी पी, मानो वह स्वयं भी धन्य हो गया हो! उसके बाद दोनों को हवालात में बन्द कर दिया।

"इनके साथ मारपीट न करना।" हवालात तक साथ जाकर वापस लौटते हुए महाराज ने अधिकारी से आश्वासन प्राप्त किया और कैदियों से कहा :

"मेरा ख्याल है कि मैं तुम्हें तीन साल से अधिक की सजा नहीं होने दूंगा।"

ऊपर की पंक्तियों में हमने श्री रविशंकर महाराज के जीवन और कार्य की जिन झलकियों का रस चखा है, उनसे उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की कुछ कल्पना तो हमें हुई ही है।

महाराज को निकट से जानने-समझने वाले उनके समकालीनों की वाणी या लेखनी से निकली बातों की इस चर्चा के बाद हम महाराज की अपनी वाणी के कुछ अनमोल बोल अपने पाठकों के मनन-चिन्तन के लिए नीचे दे रहे हैं :

* जो दूसरों को दुःख पहुँचाये बिना, श्रम करके, और सम्यक् रीति से प्राप्त होती है, वह सम्पत्ति है। और जो इससे उल्टी रीति से प्राप्त की जाती है, वह विपत्ति है।

* जो मनुष्य प्रतिदिन पुरुषार्थ करता है, उसे परिग्रह की आवश्यकता नहीं होती, बिना मेहनत किए खाने की वृत्ति में से परिग्रह की वृत्ति उत्पन्न होती है।

* यदि जीवन में कोई गांठ पड़ जाय, तो उसे खोलिए, तोड़िए मत। टूटा हुआ तार शायद जुड़ तो जायगा, लेकिन बीच में गांठ बनी रहेगी।

* मूर्तिकार पत्थर में से भगवान की जो मूर्ति बनाता है, उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है और वह पूजी जाती है। दूसरी ओर दुनिया के जीते-जागते भगवानों के लिए जो अनाज आदि चीजें पैदा करता है, उस किसान की प्रतिष्ठा नहीं! कितनी बड़ी भूल है यह!

* शक्ति विधान में अथवा नियम में नहीं होती। शक्ति तो मनुष्यता में भरी रहती है। जब मनुष्य के दिल में कोई भाव जागता है, तो वह बेहिसाब काम कर सकता है। इसलिए नियमों की रक्षा करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि उससे मानवता न मुरझा जाय।

* प्रसाद का अर्थ है हृदय की प्रसन्नता। प्रसन्नतापूर्वक परिश्रम से उत्पन्न वस्तु को ब्रह्मार्पण के भाव से मानव-प्रभु के सामने चढ़ाने का नाम ही प्रसाद है।

* ईश्वर माली है, हम फूल हैं। फूलों को खिला देख कर माली खुश होता है। इसी तरह ईश्वर को खुश रखने के लिए हमें भी खिला हुआ रहना चाहिए, प्रेम से रहेंगे, तो ईश्वर का यह बाग सदा खिला रहेगा।

महाराज के इन कुछ अनमोल बोलों से हमको उनके मन के तौल के साथ उसकी गहराई और विशालता का सहज ही पता चलता है। परम मंगलमय परमात्मा की हम भारतवासियों पर यह बहुत ही बड़ी कृपा है कि उसने रविशंकर महाराज-जैसे पुण्य-श्लोक पुरुष को हमारे बीच इतनी लम्बी उमर तक रहने और हमारे मार्ग-दर्शक बनने का सुअवसर और सौभाग्य हमें दिया है। महाराज के जीवन का नन्दा दीप आज ९४ साल की लम्बी उमर के बाद भी अपने पूरे प्रकाश से प्रकाशित है, इसका अपार आनन्द हमारे मन में हिलोरें ले रहा है। उनकी दोनों आंखों की ज्योति जा चुकी है। बुढ़ापे ने शरीर को काफी थका दिया है। चोटों के कारण पांव अपनी सहज गति से चलने-फिरने लायक नहीं रहे हैं। फिर भी महाराज का मन तो पहले ही की तरह जाग्रत है और अपरम्पार करुणा से परिपूरित है। इस उमर में और इस हालत में भी उनका दिल दुखियों की पुकार सुनकर द्रवित हो उठता है और वे उनके दुखों को दूर करने के लिए बराबर कमर कसे रहते हैं। चाहे सूखा हो, चाहे बाढ़ हो, अथवा कोई दूसरा आसमानी-सुलतानी संकट हो, जहां-जहां भी मानवता दुखी और पीड़ित होकर पड़ी होती है, वहां-वहां महाराज अपने मन, वचन और कर्म से उसके दुःख को और उसकी पीड़ा को मिटाने के लिए खड़े पांव तैयार मिलते हैं। महाराज का यही वैभव है। उनकी इस विभूति के आगे कौन नत मस्तक नहीं होगा! □

मोहब्बत के पैगम्बर हजरत उमर

□

सुशीला

रात का समय था। सारा मदीना शहर सोया पड़ा था। उसी समय हजरत उमर शहर से बाहर निकले। तीन मील जाने के बाद एक औरत दिखाई दी। वह कुछ

पका रही थी। पास ही दो-तीन बच्चे रो रहे थे। हजरत उमर ने उस औरत से पूछा, "ये बच्चे क्यों रो रहे हैं?" औरत ने जवाब दिया, "भूखे हैं। कई दिन से खाना नहीं मिला। आज भी कुछ नहीं है। खाली हांडी में पानी डाल कर पका रही हूं।"

हजरत ने पूछा, "ऐसा क्यों कर रही हो?"

औरत ने जवाब दिया, "बच्चों का मन बहलाने के लिए।"

हजरत उमर तड़प उठे। उसी समय वापस लौटे। खजाने से घी, आटा और खजूरें लीं। नौकर से बोले, "इन्हें मेरी पीठ पर बांध दो।" नौकर ने कहा, "यह आप क्या कर रहे हैं? मैं ले चलता हूं।" हजरत उमर ने जवाब दिया, "कयामत में मेरा बोझ तुम नहीं उठाओगे।"

सब चीजें वह खुद लाद कर ले चले। उसी औरत के पास पहुंचे। उसने ये चीजें देखीं तो बहुत खुश हुई। जल्दी-जल्दी आटा गूंदा। हांडी चढ़ाई। हजरत उमर चूल्हा फूंकने लगे। खाना तैयार हुआ। बच्चों ने पेट भर कर खाया। खाकर उछलने-कूदने लगे। हजरत उमर देखते थे, खूब खुश होते थे। मां भी बहुत खुश थी। बार-बार दुआएं दे रही थी। कहती थी, "खलीफा तुमको होना चाहिए। उमर इस काबिल नहीं है।"

बेचारी गरीब मां! उसे कौन बताता कि वह किस से बातें कर रही है।

एक रात उमर फिर ऐसे ही घूम रहे थे। देखा—एक बद्दू अपने खेमे के बाहर बैठा हुआ है। वह भी उसके पास जा बैठे। इधर-उधर की बातें होने लगीं। बीच-बीच में कहीं से रोने की आवाज आ रही थी। पता लगा कि खेमे के भीतर कोई रो रहा है। पूछा, "कौन रो रहा है?"

बद्दू ने जवाब दिया, "मेरी बीवी।"

"क्या बात है?"

"बच्चा होनेवाला है।"

"क्या वह अकेली है।"

"हां।"

हजरत उमर घर लौटे। अपनी बीवी को साथ लिया। फिर वहीं आये। रोने की आवाज उसी तरह आ रही थी। बद्दू से बोले, "यह मेरी बीवी है। तुम कहो तो यह भीतर चली जाय।"

नेकी और पूछ-पूछ! बद्दू बहुत खुश हुआ। हजरत उमर की बीवी भीतर चली गई। कुछ देर बाद बच्चा पैदा हुआ। भीतर से ही उनकी बीवी ने पुकारा, "अमीरुल मोमनीन, अपने साथी को बधाई दो।"

बद्दू चौंक पड़ा—"क्या कहा, अमीरुल मोमनीन! क्या यह मोमीनों के नेता, खलीफा, हजरत उमर हैं?"

वह हाथ जोड़ने लगा। हजरत उमर बोले, "नहीं, कोई बात नहीं। कल मेरे पास आना। बच्चे के लिए वजीफा बांध दूंगा।"

एक रात घूमते-घूमते उनके कानों में गाने की आवाज आई। बड़ा दर्द-भरा गाना था। एक औरत अपनी खिड़की पर बैठी हुई गा रही थी—"रात काली है और लम्बी होती जाती है। मेरा मालिक मेरे पास नहीं है...।" उस औरत का मालिक लड़ाई पर गया हुआ था। उसी की याद में वह गा रही थी। यह गाना सुनकर हजरत उमर बहुत दुखी हुए। सोचने लगे—"मैं अरब की औरतों पर जुल्म कर रहा हूं।"

और वह सोच कर ही नहीं रह गये, तुरन्त हजरत हफसा के पास आये। पूछा, "औरत अपने मालिक के बिना कितने दिन रह सकती है?"

जवाब मिला, "चार महीने।"

सुबह होते ही हजरत उमर ने हर जगह आदेश भेज दिया कि कोई भी सिपाही चार महीने से ज्यादा बाहर न रहे।

एक बार वह लोगों को खाना खिला रहे थे। देखा कि एक आदमी बांये हाथ से खाना खा रहा है। वह उसके पास पहुंचे। बोले, "दाहिने हाथ से खाओ।"

उसने जवाब दिया, "दाहिना हाथ नहीं है। वह लड़ाई में जाता रहा।"

उनका दिल भर आया। आंखों से आंसू बहने लगे। वहीं उसके पास बैठ गये। बोले, "अफसोस! तुमको

वजू कौन कराता होगा ? सिर कौन धोता होगा ? कपड़े कौन पहनाता होगा ?"

बाद में उसके लिए एक नौकर तैनात कर दिया। जरूरी चीजें अपने पास से दीं।

हजरत उमर इस्लाम के दूसरे खलीफा थे। खलीफा राजा भी होते थे और पोप भी। वह राज भी करते थे और धर्म की रक्षा भी। वह बहुत बड़े थे। राज करने में भी बड़े थे। धर्म फैलाने में भी बड़े थे। वह देश पर राज करते थे। देश के लोगों पर राज करते थे। लोगों के दिलों पर राज करते थे। जो दिलों पर राज करता है, वही बड़ा है। ये कहानियां इस बात की गवाह हैं।

●

हजरत मुहम्मद इस्लाम के पैगम्बर थे। पैगम्बर ईश्वर का सन्देश लानेवाला होता है। उन्होंने एक ईश्वर की पूजा का प्रचार किया। उन्होंने अरबों को एक कौम बनाया। उनके उपदेशों का सार था—एक ईश्वर की पूजा करो। सब भाई-भाई हैं। कोई न ऊंचा है, न नीचा। बुरे कामों से बचो। नेक कामों में लगो। इसीका नाम उन्होंने इस्लाम रखा। इसका मतलब है—अपने को भगवान् को सौंप देना।

उस जमाने के लोग बड़े खराब थे। इन बातों का विरोध करते थे। वे बहुत से देवी-देवताओं को मानते थे। आपस में लड़ते रहते थे। बुरे-बुरे काम करते, शराब पीते, जुआ खेलते, लड़कियों को मार डालते, पशु-बलि और नरबलि चढ़ाते। कुछ लोग तो अपने बेटों की बलि भी चढ़ा देते थे। छुआछूत भी थी। ये सब लोग कबीलों में बंटे हुए थे।

मक्के में उन दिनों सबसे बड़ा कबीला कुरैश का था। उनका सरदार मक्के पर राज करता था। वही काबे का रखवाला था। ये लोग नए धर्म के विरोधी थे। सब बराबर हैं—ये इस बात को नहीं मानते थे। शुरू में उन लोगों ने मुहम्मदसाहब को लालच दिया, पर वह नहीं माने। इस पर वे मोहम्मद साहब और उनके साथियों को सताने लगे।

हजरत उमर भी कुरैश थे। बहुत बहादुर थे। उनका डीलडौल बड़ा उंचा था। हजारों आदमियों में अलग दिखाई दे जाते। वह भी मुहम्मदसाहब के खिलाफ थे, लेकिन उनके बहनोई सईद मुसलमान हो चुके थे। उनके साथ उमर की बहन फातिमा भी मुसलमान हो गई थी। कई दूसरे लोग भी मुसलमान हो गये थे। उनमें उनके घराने की एक दासी थी। उमर मुसलमानों के बैरी थे। वह उस दासी को खूब मारते थे। मारते-मारते थक जाते तो कहते, "जरा दम ले लूं तो फिर मारूंगा।"

वह दूसरे लोगों को भी सताते थे, लेकिन नये धर्म का नशा बड़ा तेज था। जिस पर चढ़ जाता था, उतरता नहीं था। उमर बड़े परेशान हुए। एक भी आदमी धर्म नहीं छोड़ता। आखिर उन्होंने मुहम्मदसाहब को मार डालने का फैसला किया। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। बस, कमर में तलवार बांधी और घर से निकल पड़े।

राह में एक साथी मिल गये। इनके तेवर चढ़े देखे तो पूछा, "किधर जा रहे हैं ?"

जवाब दिया, "मुहम्मद का फैसला करने।"

साथी ने कहा, "पहले घर की खबर लो। तुम्हारी बहन और बहनोई दोनों इस्लाम को मान चुके हैं।"

उमर तुरन्त लौट पड़े। उसी तरह बहन के घर पहुंचे। बहन कुरआन पढ़ रही थी। आहट पाकर चुप हो गई। कुरआन छिपा दी; लेकिन आवाज उमर के कानों में पड़ चुकी थी। पूछा, "क्या पढ़ रही थी ?"

बहन ने जवाब दिया, "कुछ नहीं।"

बोले, "मैं सुन चुका हूं। तुम दोनों मुसलमान हो गये हो।"

यह कहकर वह बहनोई की तरफ झपटे। वह उनको मारना चाहते थे। बहन बचाने दौड़ीं। उमर ने उसका चेहरा भी लहूलुहान कर दिया। पर वह डरी नहीं, झिझकी तक नहीं। बोली, "उमर, जो जी में आवे, करो।"

उमर का हाथ रुक गया। उसने अपनी बहन को देखा। उसके चेहरे पर एक भी शिकन नहीं थी। घबराई नहीं थी। डर नहीं था। आंखों में वही प्यार था। वह कह रही थी, "तू हमें इसलिए मारता है कि हम एक खुदा को मानते हैं। हां, मैं कहती हूं—खुदा एक है, दूसरा कोई नहीं है।

मुहम्मद उसका रसूल है। ले, अब मार डाल।"

उमर का दिल धड़कने लगा। इतने निडर, इतने साहसी हैं ये लोग ! मौत से भी नहीं घबराते। इस्लाम में इतनी ताकत है। उन्होंने फिर बहन की तरफ देखा। उसके बदन से अब भी खून बह रहा था। उमर का दिल भर आया। आँखों में प्यार झलकने लगा। बोले, "तुम जो पढ़ रही थीं, मुझे भी सुनाओ।"

फातमा कुरआन ले आई। उमर उसे पढ़ने लगे, गौर से पढ़ने लगे। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा, बार-बार पढ़ा। पढ़ चुके तो पुकार उठे, "अल्लाह एक है। मुहम्मद उसका रसूल है।"

इसके बाद बहन और बहनोई से माफी मांगी। फिर हजरत मुहम्मद के पास पहुँचे। दरवाजा खटखटाया।

किसी को भी इस नई कहानी का पता न था। कमर में तलवार बंध रही थी। वहाँ जो लोग थे, वे कुछ घबराये। लेकिन एक साहब बोले, "आने दो। नीयत साफ है तो ठीक है, नहीं तो उसी तलवार से सिर काट दूंगा।

उमर भीतर आये। मुहम्मदसाहब आगे बढ़े उनका दामन पकड़ कर बोले, "क्यों उमर, कैसे आये हो ?"

उमर कांपने लगे। बोले "ईमान लाने के लिए।" यह सुनना था कि सब लोग एकदम पुकार उठे, "अल्लाहो अकबर !"

यह पुकार बड़ी तेज थी, इतनी तेज कि मक्का की तमाम पहाड़ियां गूंज उठीं। क्यों न गूंजतीं, उमर मुहम्मद के साथ मिल गये थे। उमर कुरैश के एक बहुत बड़े सरदार थे। उमर इस्लाम के भी बड़े आदमी हुए।

वह सबको बराबर समझते थे। गरीब और अमीर छोटे और बड़े सबका एक दरजा था। कहा करते थे, "अल्लाह नेकी और अच्छे कामों को देखता है। जन्म को नहीं देखता। उसकी नजर में सब बराबर हैं।" वह इन बातों को कहते ही नहीं थे, मानते भी थे। वह अफसरों को भी टोकते रहते थे।

हजरत उमर के लिए राज करने का मतलब था सेवा करना। वह अपने को मालिक नहीं समझते थे। एक बार एक बड़े आदमी मिलने आये। साथ में और लोग भी थे। आकर देखा—वह आस्तीन चढ़ाये इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं। उन्हें देखा तो बोले, "आओ, तुम भी मेरा साथ दो।" आनेवाले ने पूछा, "खैर तो है ! क्या हो गया ?"

बोले, "खजाने से एक ऊंट भाग गया है। एक ऊंट में कितने गरीबों का हक शामिल है।"

एक आदमी बोल उठा, "अमीरुल मोमनीन, आप क्यों परेशान हो रहे हैं ? किसी गुलाम को कहिये, वह ढूंढ़ लावेगा।"

उन्होंने फौरन कहा, "मुझसे बढ़कर कौन गुलाम हो सकता है !"

वह बड़ी सादगी से रहते थे। जमीन पर सोते थे। खाना बड़ा सादा खाते थे। महीनों गेहूं का आटा घर में नहीं पकता था। छानते तो कभी भी नहीं थे। कपड़े भी सादे होते। अक्सर उनमें पैबन्द लगा रहता। बदन पर फटा हुआ कुरता, सिर पर फटा हुआ अमामा, पैरों में फटी हुई जूतियां। एकबार देर तक घर से नहीं निकले। बाहर लोग राह देख रहे थे। आये तो कारण मालूम हुआ। पहनने को कपड़े न थे, सो बदन के कपड़ों को धोया था। सूख गये तो पहन कर बाहर आये।

कभी कन्धे पर मशक लिये जा रहे हैं। बेवा औरतों के घर पानी भरना है। कभी मस्जिद के कोने में जमीन पर लेटे हैं। काम करते-करते थक गये हैं। बार-बार बादशाही काम से सफर करते, पर साथ में न खेमा, न शामियाना। न फौज, न फाटा। किसी पेड़ पर कपड़ा डाल दिया जाता। उसी की छांह में इस्लाम का वह महान् खलीफा आराम करता।

एक बार वह सीरिया गये। साथ में बस एक नौकर था। राह में आप उसके ऊंट पर सवार हो गये। शायद गलती से ऐसा हुआ था। जान-बूझ कर भी हो सकता है। जो हो, ऊंट बदल गया। उनका ऊंट कुछ सजा हुआ था। जब शहर में पहुँचे तो लोग स्वागत करने आये। बड़ा-मजा

आया। लोग नौकर की तरफ जाते। उसी को खलीफा समझते। वह हजरत उमर की तरफ इशारा करता। लोग हैरान-परेशान, आखिर खलीफा कौन से हैं ? बेचारे शान-शौकत ढूंढ़ते थे, पर वह हजरत उमर के पास कहां मिलती !

यह बात नहीं कि वह कंजूस थे। असल में उनको लोगों के सामने मिसाल रखनी थी। खुद ऐश करते तो लोगों से क्या कहते ! वह जानते थे कि अफसर बिगड़ते जा रहे हैं। इसलिए अपने पर कुछ अधिक सख्ती करते थे। ●

करुणामूर्ति मदर टेरेसा

□

दुर्गाशंकर त्रिवेदी

"मां" शब्द अपने आप में एक अजीब-सी अनुभूति देने वाला है, न ! मैं प्रयत्न कर रही हूं कि जिन्हें 'मां' का प्यार चाहिए, उन्हें वह प्यार दूं।" मदर टेरेसा ने कहा। ...और मैं उनके मुंह पर बिखरे वात्सल्य की अनुभूति के उतार-चढ़ाव को आत्मीयता से देखता रहा ! 'मां' के कई बिम्ब तब मेरी आंखों में रह-रह कर तैर-तैर जाते रहे ! उठते रहे, मिटते रहे !

६५ वर्ष से भी अधिक आयु की वात्सल्य-मूर्ति मदर टेरेसा, दुबली-पतली, किन्तु सेवा की जीती-जागती मूर्ति हैं ! झुर्रियों भरे उनके मुंह पर मातृत्व की गौरव-भरी आकांक्षाएं तैरती प्रतीत होती हैं ! उनकी एक मुस्कान, ममता-भरी थपकी और स्पर्श पीड़ा को अनायास ही हर लेता है। वे मानव सेवा के लिए समर्पित कैथोलिक सम्प्रदाय की शायद पहली संन्यासिनों की अगुआ हैं, जो कि पूर्णतः संन्यासी बन चुकी हैं और जिन्होंने भारत की नागरिकता ग्रहण करके इस देश के दुखी नागरिकों के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। भारतीय वेशभूषा, भारतीय भाषा और 'नमस्कार' के द्वारा आगन्तुक का स्वागत करने वाली मदर टेरेसा प्रेम और सेवा की जीवन्त प्रतीक हैं। उनके काम का मूल्यांकन हो रहा है या नहीं, उन्हें अपेक्षित मात्रा में जन-सहयोग उपलब्ध है या नहीं, बिना इसकी परवा किये वे प्रत्येक दीन-दुःखी की पीठ पर मातृ-सुलभ वात्सल्य-भावना भरा हाथ फेरती हैं और उन्हें सन्तोष तभी होता है जबकि उस दुःखी के होठों पर एक मुस्कान तैर उठती है। आज के यांत्रिक युग में उनकी सहज सेवा-भावना का विशेष महत्व है। उपेक्षितों के प्रति उनकी करुणा का विशेष मूल्य है।

५४-ए, लोअर-सरक्यूलर रोड, कलकत्ता स्थित उनके आश्रम में मेरी सहज जिज्ञासा इस मिशन के ध्येय वाले तथ्य पर केन्द्रित रही। वहीं किसी ने तब मुझे बतलाया था, मदर टेरेसा का ध्येय है :

"उनको प्यार देना, जिन्हें कोई प्यार नहीं करता है। उन्हें चाहना, जिन्हें कोई नहीं चाहता, चाहे वे अपंग हों, बेसहारा हों, बीमार हों या मरणासन्न हों।"

मानव-सेवा के लिए अहर्निश छटपटाती ऋषिमाता-सी लगने वाली मदर टेरेसा को देखकर मन मानता ही नहीं है कि वे यूगोस्लाविया में जन्मी एक विदेशी महिला हैं, बल्कि सफेद नीली किनारे वाली सादी साड़ी में लिपटी, सेवा की चमक से आलोकित चेहरे वाली 'मां' का एक आदर्श चित्र मानस-पटल पर अंकित कर देती हैं।

२७ अगस्त १९१० को यूगोस्लाविया के स्कोपये नामक कस्बे में आल्बेनियन किसान दम्पति के घर मानवता को समर्पित इस मंजुल मूर्ति ने जन्म लिया था। बचपन में वे 'एगनेस' के नाम से पुकारी जाती रही थीं। १८ वर्ष की आयु में उन्होंने धर्म-प्रचार और ईसाई मिशनरी के माध्यम से दीन-दुखियों की सेवा का व्रत लिया और घर छोड दिया। तब से वे मानव-सेवा में ऐसी लीन हुई कि उन्होंने पीछे मुडकर एक क्षण को भी नहीं देखा और भारत की बनकर जन-सेवा में रम गईं।

अपने सेवामय जीवन का आरंभ उन्होंने डबलिन में नन के रूप में किया। बाद में वे कलकत्ता के कैथोलिक संन्यासिनों के संगठन द्वारा संचालित 'लोरेटो स्कूल' में भूगोल की अध्यापिका बनकर आईं और १७ वर्ष तक वे अध्यापन करती रहीं। यहीं गरीब-अमीर के बीच की

गहरी खाई, पीड़ितों दीन-दुखियों की उपेक्षा, भूखे-नंगों के प्रति समाज का हीन-भाव आदि नजदीक से देखा। वे उनकी सेवा करने के लिए छटपटाने लगीं, लेकिन कुछ बंधन उन्हें रोक रहे थे। अत: ८ अगस्त १९४८ को उन्होंने अपनी कुल जमा-पूंजी पांच रुपये लेकर एक मोटी सफेद धोती पहनकर अपने आपको मानवता की सेवा में समर्पित करने के ध्येय से मिशन की सेवा से मुक्ति का प्रार्थना-पत्र देकर बिदा ले ली और तब से वे हर वात्सल्य के भूखे चेहरे के लिए 'मां' हैं, पूरी आत्मीयता उंडेलती 'मां' !

हर अच्छे काम के लिए कभी भी पैसे की कमी आड़े नहीं आती। मदर टेरेसा की ५ रुपये की पूंजी ने तुरंत सहायता के लिए अनगिनत हाथ आगे बढ़वा दिये। उन्हें खुले हाथों सेवा-कार्य के लिए सहायता और गुप्त दान मिलने लगा।

पिछले २७ वर्षों के इस सेवा-काल में उन्हें कई बड़े-बड़े पुरस्कार भी मिले जो कि उनकी मानव-सेवा-भावना की स्वीकृति के रूप में थे।

१९६४ में पोप पॉल जब भारत आये तो उन्होंने मदर के लिए अपनी सफेद 'लिंकन' कार भेंट कर दी, किन्तु 'मदर' ने उसे गरीबों से मिलने में बाधक माना और लाटरी डालकर कार को बेच दिया। उस धन से न जाने कितने दीन-दुखियों की सेवा सही रूप में हुई।

पीड़ित मानवता के लिए समर्पित मदर टेरेसा ने स्वयं-सेवी संस्थाओं का जाल बिछा दिया है। 'मिशनरीज ऑफ चेरिटी' नामक संस्थाओं के केन्द्र द्वारा ये संचालित होती हैं। नि:स्वार्थ भाव से मानव-सेवा के लिए समर्पित संन्यासिनें इसके माध्यम से सेवा-कार्य में संलग्न हैं। 'मिशनरी ब्रादर्स ऑफ चेरिटी' नाम से पुरुषों के लिए भी एक संगठन है। एक और संस्था है 'मदर टेरेसा के सहयोगी कार्यकर्त्ता।' इसमें हर धर्म, हर क्षेत्र और हर प्रकार की सहायता के लिए द्वार खुले हुए हैं।

कलकत्ता के लोअर सरक्युलर मार्ग पर बेसहारा बीमार बच्चों के लिए 'निर्मल शिशु भवन' नामक संस्था संचालित है ! इसके माध्यम से देश भर की इसकी शाखाओं में तीन हजार से भी अधिक बच्चे पल रहे हैं। जिन्हें उनके माता-पिता ने निर्मम होकर मरने के लिए बेकार मान कर फेंक दिया था, वे मदर टेरेसा से प्यार पा रहे हैं। उन्हें सुयोग्य नागरिक बनने की शिक्षा-दीक्षा के लिए इन केन्द्रों में पर्याप्त प्रबंध है।

कलकत्ता के काली मंदिर के पास ही एक धर्मशाला में 'निर्मल हृदय' स्थापित है। मृत्यु की प्रतीक्षा करते लोगों के लिए इसमें सेवा-सुश्रूषा की व्यवस्था है। इस तरह के ३२ केन्द्र देश भर में संचालित हैं, जिनमे २००० से भी अधिक बेसहारा मरणासन्न रोगियों को वात्सल्य भरी मानसिक शांति और सुश्रूषा उपलब्ध कराई जाती है।

कलकत्ते के पास ही शांतिनगर में कुष्ठ-रोगियों के लिए ३४ एकड़ भूमि में इलाज के लिए पुनर्वास और रोजगार के लिए साधन जुटाये हैं। इस तरह के ६७ केन्द्रों के द्वारा ४४,००० से भी अधिक कुष्ठियों की चिकित्सा तथा रोजगार की व्यवस्था की जाती है।

स्कूलों, डिस्पेन्सरियों, मातृ एवं शिशु गृहों, रिलीफ सेन्टरों आदि के माध्यम से हजारों बच्चों, बीमारों, अनाथों, विकलांगों आदि को सहायता दी जाती है। इस प्रकार 'समाज-सेवा, को नहीं, मानव-सेवा' को सेवा का मूल-केन्द्र मानकर 'मदर टेरेसा' ने मूक मानवता की बहुमूल्य सेवा की है। उनकी सेवा-संस्थाओं का जाल तेजी से फैलता जा रहा है, यह पीड़ित मानवता के लिए बहुत ही शुभ है।

'सादा जीवन उच्च विचार' की मूर्तिमंत्र प्रतीक मदर का जीवन बहुत ही सादा है। निजी सामान के नाम पर प्लास्टिक की एक बाल्टी, कुछ कपड़े, भजनों और प्रार्थनाओं की पुस्तकें उनके पास हैं। जो भी भोजन सदन में सबके लिए बनता है, उसे वे बड़ी ही प्रसन्नता से ग्रहण कर लेती हैं।

सवेरे ४-३० बजे उठकर वे स्नान-ध्यान और प्रार्थना से निवृत्त होकर पैदल कुछ साथियों के साथ गरीबों की गंदी बस्तियों में चली जाती हैं। जो भी सहायता का पात्र दिखाई दे जाता है, चाहे वह पशु हो या मनुष्य, उसकी पूरे दिल से सहायता करती हैं।

उनकी मानव-सेवा का यह कार्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहा है। इटली, लंका, आयरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, इंग्लैंड, मध्यपूर्वी देश अफ्रीका और लेटिन अमरीका में भी उनके केन्द्र हैं।

आश्रम के एक सदस्य ने एक चर्चा के दौरान कहा था, "'मां' शब्द मैंने पढ़ा था, कितावों और किस्सों में उसके वात्सल्य की चर्चाएं भी पढ़ता रहा हूं, किन्तु मदर टेरेसा के वात्सल्य से भीगा मैं अनुभूति कर पाया कि मानव-जीवन में आखिर मां का महत्व क्या है?" □

जीव-दया के मसीहा अलबर्ट श्वाइट्ज़र

□

सुरेशराम

पश्चिमी जर्मनी का गुन्सबाख गांव। सन् १८८२। सर्दियों के दिन। दो लड़के आपस में लड़ पड़े। उनमें से एक था पादरी का बेटा, दूसरा मेहनत करने वाले मजदूर का।

पादरी के बेटे ने मजदूर के लड़के को पछाड़ दिया। उसकी छाती पर चढ़ बैठा। कहने लगा, "बोल! अब बोल! हार गया न? मुझसे भला जीत सकता है!"

हारे हुए लड़के ने जवाब दिया, "मुझे भी तेरी तरह मांस-मक्खन खाने को मिला होता तो मजा चखा देता।"

"तुझे मांस-मक्खन नहीं मिलता क्या?"

"मिलता होता तो यह हालत क्यों होती!"

इतना सुनते ही पादरी का लड़का उसे छोड़ कर खड़ा हो गया। मन-ही-मन पछताने लगा। तय किया कि अब वही खाना खाऊंगा, जो गरीब लोगों को मिलता है।

"मां, मुझे रातवाली प्रार्थना पसन्द नहीं है!" उसने बड़े आदर से अपनी माता से कहा।

"क्यों, क्या बात है? तू ईश्वर को नहीं मानता क्या?"—आश्चर्य से माता ने पूछा।

"तुम्हारी प्रार्थना बहुत सीमित है!"

"क्या मतलब?"

"उसमें परिवार-वालों और पड़ोसियों के लिए ही दुआ मांगी जाती है।"

"तो तू क्या चाहता है? मानव-मात्र से प्रेम करना हमारा धर्म है।"

"और जो मानव नहीं हैं, लेकिन जिनमें प्राण है, उन्हें हम क्यों भूल जाते हैं?"

"साफ बोल, क्या चाहता है?"

"मैं चाहता हूं कि हमारी प्रार्थना सारे जीवों, पशु-पक्षियों तक के लिए होनी चाहिए।"

"यह कैसे हो सकता है?"

"तो आज रात से मैं अपनी प्रार्थना अलग किया करूंगा।"

"तू तो पागल हो गया है। तेरी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

वह कुछ न बोला। लेकिन घर की प्रार्थना के बाद वह अकेले में अलग से प्रार्थना करने लगा। वह विनती करता—"हे! परमपिता! सांस लेनेवाले, सभी जानदार प्राणियों की रक्षा कर और उन्हें दुआ दे। उन्हें सारी बुराइयों से बचा और उन्हें शान्ति की नींद दे!"



वह अपने घर पर बैठा कुछ काम कर रहा था। एक वयोवृद्ध, शुभचिंतक गुस्से में आये। बोले, "अलबर्ट! हमें तुमसे बहुत शिकायत है!"

"कहिये, कहिये, क्या बात है?"

"हमने सुना है कि तुम डॉक्टरी पढ़ने जा रहे हो।"

"जी हां! मैंने यही फैसला किया है।"

"तुम जैसा विद्वान, धर्मशास्त्र का पंडित, संगीत का आचार्य अपने उपदेशों से बड़ा उपकार कर सकता है। तुमको डॉक्टरी पढ़ने की क्या जरूरत है?"

"नहीं—नहीं। मैं डाक्टर इस वास्ते बनना चाहता हूं ताकि बिना मुंह खोले कुछ काम कर सकूं, दीन-दुखियों की सेवा कर सकूं, प्रेमरूपी धर्म को अमल में उतार सकूं।"

"तुम्हारे जैसे सब हो जायं तब तो आफत ही हो जायेगी।" यह कहकर बड़बड़ाता हुआ वह बूढ़ा चला गया।

●

"तुम बड़े विचित्र आदमी हो !"—एक मित्र ने कहा।

"क्या हुआ ?"

"सुना है कि तुम्हारा इरादा अफ्रीका जाकर वहां के जंगली लोगों के बीच रहने का है !"

"हां, तुमने ठीक सुना है।"

"वे लोग तो बड़े अशिक्षित, अपढ़, असभ्य हैं !"

"इसकी जिम्मेदारी किसकी है ?" दर्द के साथ अलबर्ट ने पूछा।

"जिम्मेदारी किसकी होती ?"

"तुम्हें जानना चाहिए, मेरे दोस्त, कि यह जिम्मेदारी हमारी है, सारे यूरोप वालों की है।"

"कैसे ?"

"उन पर अपना साम्राज्य स्थापित कर हमने उनके साथ बड़ा अन्याय किया है। तरह-तरह का अत्याचार किया है। उनके बीच बीमारियां फैलाई हैं, उन्हें नशीली चीजों का आदी बनाया है।...बड़ भयानक हैं हमारे कारनामे !"

"सच कह रहे हो क्या ?"

"एकदम सच। हम और हमारी सभ्यता एशिया और अफ्रीका वालों की ऋणी है। हम जो कुछ भी उनके निवासियों की खातिर करें, वह उपकार नहीं, प्रायश्चित्त है।

●

अफ्रीका के गेबन देश का लम्बारेन नगर। वहां एक नया खुला अस्पताल। सुबह का समय। डाक्टर हर पलंग पर जाकर मरीजों से मिल रहा था।

"रात तुम्हें नींद आई ?" उसने एक मरीज से पूछा।

"नहीं आई, डॉक्टर !"

"क्यों, क्या बात है ?"

"इसके लिए आप जिम्मेदार हैं ?

"मैं ! सो कैसे ?"

"रोज तो आप रात को मुझे 'नमस्कार' कहने आते थे, कल रात नहीं आये !"

डॉक्टर ने मुस्करा कर कहा, "माफ करना, कल शाम कुछ मेहमान यूरोप से आगये थे। इस वजह से मैं रात में फेरा नहीं लगा पाया।"

"आज तो आइयेगा ?"

"जरूर !"

रात को डाक्टर उस मरीज के पास गया। उसके माथे पर हाथ फेरा और अच्छी नींद आने के लिए कामना की।

ऊपर दिये प्रसंगों से मानवता के उस महान सेवक के जीवन की कुछ झांकी मिल जायेगी, जिसका नाम था अलबर्ट श्वाइटजर। ईसाई धर्म-ग्रन्थों के प्रकाण्ड विद्वान और लेखक, पीढ़ी-दर-पीढ़ी के पुजारी और उपदेश-कला में सिद्ध, संगीत-शास्त्र के अद्भुत ज्ञाता और रचयिता, इन तीनों उपलब्धियों की बदौलत वह आनन्द की जिन्दगी बिता सकते थे और ऊंची-से-ऊंची प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर सकते थे। लेकिन उन्होंने बुद्धि-विलास और ऐश्वर्य का जीवन ठुकरा कर दीन-दुखियों के बीच जाकर उनकी मरहम-पट्टी करने, उनका टट्टी-पेशाब उठाने और उनकी सेवा में ही ईश्वर का दर्शन करने का तय किया। तेतीस साल की उम्र में एक मेडीकल कालेज में भर्ती हुए, आम विद्यार्थी की तरह डॉक्टरी का अध्ययन और अभ्यास किया और पांच साल की पढ़ाई पूरी करके अफ्रीका के एक घने जंगल में एक नदी के किनारे दस हजार की आबादी वाले कस्बे में बैठ गये। अर्ध-शताब्दी से ज्यादा अरसे तक वहां सेवा करते-करते उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। आज अलबर्ट श्वाइटजर की गिनती मानवता के शिरोमणि पुजारियों और महामानवों में की जाती है।

उनका जन्म १४ जनवरी १८७५ को पश्चिमी जर्मनी के गुन्सबाख गांव में हुआ। पिता और दादा पादरी थे। और माता भी एक पादरी की बेटी थी। उनके गांव से कुछ ही दूर पर फ्रांस देश की सीमा शुरू हो जाती है।

इसलिए बालक अलबर्ट को जर्मन और फ्रांसीसी दोनों भाषाओं में एक-सी दक्षता प्राप्त थी।

बचपन से ही उनमें करुणा का स्रोत उमड़ा पड़ता था और साथ-ही-साथ ज्ञान की जिज्ञासा भी थी। पिता ने जाड़ों में पहनने के लिए एक बढ़िया ऊनी कोट बनवा कर दिया। मगर अलबर्ट ने उसे छुआ तक नहीं। कहा, "जब मेरे गांव या मेरे स्कूल के अनेक बच्चों को वैसा कोट नहीं मिल सकता तो मुझे भी उसके पहनने का कोई हक नहीं है।''

पिता नाराज हो गये, "जीवन में जो तुम्हारी स्थिति है, उसके अनुकूल कपड़ा न पहनना मूर्खता है, अपराध है।" बालक को कोठरी में बन्द कर दिया। अलबर्ट कुछ न बोला। सजा को चुपचाप बर्दाश्त किया।

अलबर्ट एक दिन बर्फ पर घोड़ा-गाड़ी चला रहा था। छुट्टी का दिन था। बड़े मौज में था। घोड़ा तेज दौड़ने लगा। अचानक कोई कुत्ता आया और घोड़े पर भौंकने लगा। अलबर्ट ने उसे फटकारा, पर कुत्ते ने एक न सुनी। आखिर अलबर्ट ने एक चाबुक उसके लगा दिया। संयोग से चाबुक उसकी आंख पर लगा। कुत्ता बिलख कर रोने लगा। अलबर्ट वहीं रुक गया और मन-ही-मन बहुत पछताया। कुत्ते का वह रोना वर्षों तक याद रहा। आगे चल कर अलबर्ट की करुणा ने प्राणि-मात्र की सेवा का रूप लिया।

गुन्सबाख में प्रारम्भिक शिक्षा के बाद, अलबर्ट ने स्त्रासबर्ग विश्वविद्यालय में नाम लिखाया। वहाँ खूब अध्ययन किया और १८९९ में पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की और अध्यापन-कार्य शुरू कर दिया। चार साल बाद एक थियोलाजिकल कालेज के प्रिंसीपल बना दिय गए। सहयोगी अध्यापकों और छात्रों में वह बड़े लोकप्रिय थे। कई पुस्तकें लिखीं, प्रसिद्धि और धन दोनों भरपूर मिलने लगे।

मगर मन में संतोष नहीं था। अन्दर-ही-अन्दर विचार उठा कि जब मेरे चारों ओर दुःख है, व्यथा है तो मुझे सुख भोगने का क्या अधिकार है? याद आया महाप्रभु ईसा का वचन कि हमारा जीवन केवल हमारे अपने लिए नहीं। संसार का जो दुःख है, उसे हमें बंटाना चाहिए।

उन्हीं दिनों एक अपील पढ़ने को मिली। वह पेरिस की फ्रांसीसी प्रोटेस्टेन्ट मिशनरी सोसाइटी, की ओर से की गई थी कि विषुवत रेखा के पास वाले फ्रांसीसी क्षेत्र में सेवक चाहिए। उन्होंने इसमें जाने का फैसला किया। मगर फिर सवाल उठा कि वहां जाकर क्या करेंगे? केवल उपदेश देंगे? नहीं, उनके दुःख-दर्द में साथ देंगे। तय किया कि डाक्टरी पढ़नी चाहिए और डाक्टर बनकर अफ्रीका के देहातों में काम करना चाहिए।

लाख विरोध होने पर भी अपने निश्चय पर अटल रहे। स्त्रासबर्ग विश्वविद्यालय में मेडिकल कालिज में भर्ती हुए और सारी पढ़ाई की। दिसम्बर १९११ में सर्जरी में आखिरी परीक्षा दी। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। छः महीने बाद अपनी एक परिचित लड़की से, जिसका नाम हेलन ब्रेसला था, शादी की। अलबर्ट ने जो कई ग्रन्थ लिखे, उसमें हेलन ने सहयोग दिया। साथ ही उसने नर्स का प्रशिक्षण भी ले लिया, ताकि डाक्टर अलबर्ट का पूरा-पूरा साथ दे सके। मार्च १९१३ में पश्चिमी अफ्रीका के गेबन देश के लम्बरेन नामक कस्बे में पति-पत्नी पहुंच गये।

वहाँ वह पेड़ों की छाया के नीचे दवा बांटने लगे। बस्ती में जाकर मरीजों की शुश्रूषा करते। कुछ ही समय में उन्होंने लोगों का दिल जीत लिया। अस्पताल की छोटी-सी इमारत बनी। काम बढ़ने लगा। आज वहां लगभग ७५ इमारतें हैं और चिकित्सा के आधुनिकतम साधन मौजूद हैं।

एक बार नाव से नदी में जा रहे थे। लम्बा सफर था। एक महिला-मरीज के लिए दवा पहुंचानी थी। नाव पर स्थानीय लोगों के साथ खाना-पीना हुआ। अचानक युवक अलबर्ट के मन में सवाल उठा—"यह जीवन क्यों?"

दर्शन-शास्त्र में पढ़ा डिकार्ट का वाक्य याद आया—"मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूं।"

पर यह जवाब जंचा नहीं, क्योंकि "मैं हूं।" पहले है, और "मैं सोचता हूँ" बाद में।

सोचते रहे। ध्यान में आया—"मैं जीवन हूँ, जिसे

जीने की इच्छा है।"

लेकिन यह भी ठीक नहीं, क्योंकि मैं अकेले में तो नहीं रहता।

मन ने कहा, "मैं जीवन हूँ, जिसे जीने की इच्छा है, उस जीवन के बीच, जो जीने को इच्छुक है।..."

सवाल उठा, "इसका अन्त क्या होगा?"

जवाब मिला, "अनन्त जीव से आध्यात्मिक एकता प्राप्त करना।"

लेकिन इसका आशय क्या है? सोचते रहे—अनन्त जीव से एकता के प्रति निष्ठा का अभिप्राय क्या है?

सोचते-सोचते उत्तर मिला, "प्राणिमात्र के प्रति, जीवन के प्रति सम्मान।"

बस, "जीवन के प्रति सम्मान" में ही अलबर्ट को सारा दर्शन, सारा अध्यातम दिखाई दिया और उसी क्षण से वह इस मंत्र के उपासक, प्रणेता और प्रचारक बन गये। ...आज सारे संसार में 'अलबर्ट श्वाइटजर' और "जीवन के प्रति सम्मान" एक-दूसरे के पर्याय बन गये हैं। इस नाम से उन्होंने एक ग्रन्थ भी लिखा, जो उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है।

सन् १९५२ में उन्हें शान्ति के लिए नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्होंने अपने पास एक पैसा भी नहीं रखा। सब-का-सब लम्बरेन में एक कुष्ठ-सेवा-केन्द्र में लगा दिया। अब तो लम्बरेन में एक विशाल उपचार-केन्द्र बन गया है, जिसके पीछे हैं अलबर्ट की निष्ठा, उनका त्याग और उनकी सेवा-परायणता। वह उस क्षेत्र में धूनी लगाकर बैठे और गेवन के रुढ़िग्रस्त, दीन-दुखी निवासियों के लिए उन्होंने जो काम किया उसे कौन भुला सकता है!

एक बार पेचिश का रोग लम्बरेन और दूरदूर तक फैल गया। अस्पताल में मरीजों के झुंड-के-झुंड आने लगे। मगर मदद देने को कोई राजी नहीं था। अलबर्ट श्वाइट्जर उठे और बोले, "मैं कैसा मूर्ख हूँ, जो इन जैसे जंगली लोगों के बीच आ बसा!"

यह सुनकर उनके अफ्रीकी सहयोगी, जासेफ़ ने कहा, "डाक्टर, यहाँ धरती पर आपकी गिनती बड़े मूर्खों में है, लेकिन स्वर्ग में बड़े बुद्धिमानों में की जायेगी।"

डाक्टर समझे नहीं और बोले, "हां, इस तरह की ऊंपटी बातें कहने की तुम्हारी आदत है। क्या ही अच्छा होता कि पेचिश रोकने के लिए हमारे काम में तुम हमें ज्यादा सहारा दिलाते!"

उधर अकाल भी फैल रहा था। डाक्टर ने कहा, "यह मेरे लिए बड़ा भयानक समय है।"

लेकिन निराशा का यह दौर क्षणिक ही था। वह बीमारी चली गई और डाक्टर पहले से ज्यादा जोश के साथ जुट गये। हर मरीज को वह अपना आराध्य देव मानते थे और उससे स्नेहपूर्ण सम्बन्ध रखते थे। उससे ही नहीं, उसके परिवार वालों से भी।

दवा देने के अलावा अलबर्ट ऑपरेशन भी करते थे। उसके पहले क्लोरोफार्म सुंघाना आवश्यक होता। इससे मरीज बेहोश हो जाता। यह देखकर अफ्रीकी लोग प्रेम से कहा करते थे, "हमारा यह डाक्टर जादूगर हैं। पहले यह लोगों को मार डालता है, फिर उनका इलाज करता है और इसके बाद उन्हें फिर से जिला देता है।"

इन्हीं की सेवा करते-करते उनके इस मसीहा का नब्बे वर्ष की आयु में ४ सितम्बर १९६५ को लम्बरेन में ही स्वर्गवास हो गया।

सेवा के साथ-साथ जीवदया डॉक्टर अलबर्ट की रग-रग में समाई हुई थी। एक बार वह इंगलैंड गये। वहां उनकी भेंट चार्ल्स एण्ड्रयूज़ से हुई। उन्हें महात्मा गांधी ने 'दीनबन्धु' की संज्ञा दी थी।

एण्ड्रयूज और अलबर्ट को कहीं जाना था। रास्ते में वर्फीला मैदान पड़ा। एण्ड्रयूज के हाथ में छड़ी थी। अलबर्ट के कंधे पर उनका झोला था, जो काफी भारी था। उनका बोझ देखकर एण्ड्रयूज ने कहा "आपका झोला इस छड़ी पर लटका लें और हम दोनों अपने कंधों पर इसे उठा लें।" अलबर्ट राजी हो गये। दोनों के कंधों पर छड़ी, बीच में वह बोझ!

चलते-चलते अलबर्ट एकदम रुक गये। एण्ड्रयूज गिरने से बाल-बाल बचे। पूछा, "अलबर्ट, क्या बात है? यों रुक क्यों गये?"

"वह देखो, वह देखो।"—अलबर्ट ने कहा। एक कीड़ा रेंग रहा था।

अलबर्ट ने कीड़े को उठाया और सड़क से अलग, एक ओर को रख दिया और कहा, "यहां यह सुरक्षित है। सड़क पर रहता तो किसी का पैर पड़ जाता और यह मर जाता। अब चलो, आगे चलो।"

दीनबन्धु एण्ड्रयूज ने लिखा है, "उनकी इस करुणा-भावना को देखकर मैं गदगद हो गया।"

अलबर्ट श्वाइटजर सेवा और जीवदया के मसीहा के रूप में सदा याद रहेंगे।

बुद्ध की मानवता

□

भरतसिंह उपाध्याय

भगवान बुद्ध देव और मनुष्यों के शास्ता थे, परन्तु सबसे पहले वह मनुष्य थे। मनुष्य बढ़कर देवता बनता है, यह प्राचीन मान्यता थी, आज भी हम मनुष्यत्व के ऊपर देवत्व की बात करते हैं, परन्तु बुद्ध ने इस क्रम को पलट दिया। उन्होंने कहा, "यह जो मनुष्यता है, वही देवताओं का सुगति प्राप्त करना कहलाती है।" देवता जब सुगति प्राप्त करता है, तब वह मनुष्य बनता है। देवताओं में विलास है, राग, द्वेष, ईर्ष्या और मोह भी वहां है। निर्वाण की साधना वहां नहीं हो सकती। इसके लिए देवताओं को मनुष्य बनना पड़ता है। मनुष्यों में ही देव-पुरुष का आविर्भाव होता है, जिनको देवता नमस्कार करते हैं। मानवता-धर्म का उपदेश देने वाले बुद्ध स्वयं मानवता के जीते-जागते रूप थे। यहां उनके जीवन से संबंधित कुछ प्रसंग दिये जाते हैं, जिनसे उनके व्यक्तित्व में पैठी हुई गहरी मानवता का दर्शन होता है।

भगवान का परिनिर्वाण होने वाला है। रात का पिछला पहर है। भिक्षु उनकी शैया को घेरे बैठे हैं। बुद्ध उन्हें उपदेश दे रहे हैं। कह रहे हैं, "भिक्षुओं, बुद्ध धर्म और संघ के विषय में कुछ शंका हो तो पूछ लो, पीछे मलाल मत करना कि भगवान हमारे सामने थे, पर हम उनसे कुछ पूछ न सके।" कोई शिष्य नहीं बोलता। भगवान तीन बार कहते हैं, पर कोई भिक्षु कुछ पूछने को नहीं उठता। भगवान को शंका होती है कि कहीं वे उनके गौरव का विचार करके पूछने में संकोच तो नहीं कर रहे! इसलिए वह कहते हैं, "शायद भिक्षुओ, तुम मेरे गौरव के कारण नहीं पूछ रहे। जैसे मित्र मित्र से पूछता है, वैसे तुम मुझसे पूछो।" बुद्ध अपने शिष्यों की समान भूमिका पर आ जाते हैं। उनकी यह विनम्रता मनुष्य-धर्म की आधार-भूमि है। बुद्ध ने अपने को भिक्षुओं का 'कल्याण-मित्र' कहा है, जो उनकी मानवीय सहृदयता और विनम्रता को सूचित करता है।

एक दूसरा दृश्य भी उसी समय का है। चन्द कर्मार-पुत्र के यहां बुद्ध ने अंतिम भोजन किया था। उसके बाद ही उन्हें खून गिरने की कड़ी बीमारी हो गई थी, जो उनके शरीरांत का कारण बनी। बुद्ध को उसके हृदय का बड़ा ध्यान था। भक्त-उपासक को यह अफसोस हो सकता था कि उसका भोजन करके ही भगवान का शरीर छूट गया। इसलिए आखिरी सांस लेने से पहले उन्होंने आनंद को आदेश दिया, "आनंद चन्द कर्मारपुत्र की इस चिन्ता को दूर करना और कहना, आयुष्मन्, तूने बड़ा लाभ कमाया कि मेरे भोजन को करके तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।" जिसके हृदय में अगाध करुणा थी, वह ऐसा क्यों न कहता?

जिस रात को बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ, आधी रात के समय सुभद्र नाम का एक परिव्राजक आया। उसके मन में कुछ शंकाएं थीं। आनंद ने उसे यह कहकर रोक दिया, "उन्हें हैरान मत करो। वह थके हुए हैं।" भगवान ने आनंद की बात सुन ली। उन्होंने आनंद से कहा, "नहीं आनंद, सुभद्र को मना मत करो। मेरे पास आने दो। वह परमज्ञान की इच्छा से पूछना चाहता है, हैरान करने की उसकी इच्छा नहीं है। पूछने पर जो मैं उससे कहूंगा, वह उसे जल्दी ही समझ लेगा।"

मध्यरात्रि में, उस अवस्था में, सुभद्र को तथागत से उपदेश सुनने का सौभाग्य मिल गया।

एक बड़ी दुखियारी स्त्री थी। पति, पुत्र, परिवार सब उसका नष्ट हो गया था। मारे दुःख के वह पागल हुई फिरती थी। कपड़े पहनने का भी उसे होश न था। उसका नाम पटाचारा था। एक दिन घूमते हुए वह बुद्ध के पास, जेतवन आराम में, आ गई। उस नंगी स्त्री को देखकर लोगों ने कहा, यह पागल है। इसे इधर मत आने दो।"

बुद्ध ने कहा, "इसे मत रोको।"

जैसे ही वह पास आई, बुद्ध ने कहा, "भगिनि, स्मृति-लाभ कर।"

स्त्री को कुछ होश आया। लोगों ने उस पर कपड़े डाल दिये, जिन्हें उसने ओढ़ लिया। स्त्री फूट-फूट कर रोने लगी। बुद्ध ने अपने उपदेशामृत से उसके शोक को दूर कर दिया।

बुद्ध का एक भिक्षु-शिष्य था वक्कलि। वह एक बार बीमार पड़ गया। उसने अपने एक साथी भिक्षु के द्वारा भगवान का दर्शन करने की अपनी इच्छा उन तक पहुंचवाई। भगवान उसकी इच्छा पूरी करने उसके पास गये। दूर से भगवान् को आता देखकर वक्कलि उनका सम्मान करने और उनको आसन देने के लिए चारपाई से उठने की चेष्टा करने लगा। भगवान ने उसे यह कहकर रोक दिया कि अलग आसन तैयार है। उसके हिलने-डुलने की आवश्यकता नहीं है, और वह बिछे आसन पर बैठ गये। वक्कलि ने उनकी वंदना करते हुए कहा, "आपके दर्शन की मेरी बड़ी इच्छा थी। आपने कृपा करके उसे पूरा कर दिया।"

बुद्ध ने कोमल स्वर में कहा, "वक्कलि शांत हो जा। तेरी जैसी गंदी काया है, वैसी ही मेरी है। वक्कलि, इस गंदी काया को देखने से क्या लाभ? जो धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है। जो मुझे देखता है, वह धर्म को देखता है।"

भगवान बुद्ध गृहस्थों के प्रति बड़ी सहानुभूति रखते थे। एक बार सुप्रवासा नामक स्त्री के बच्चा होने वाला था और वह असह्य वेदना से पीड़ित थी। उसने अपने पति के द्वारा बुद्ध के चरणों में प्रणाम अर्पित करवाया। भगवान ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, "कोलिय-पुत्री सुप्रवासा, सुखी हो जाय, चंगी हो जाय। सुखी और चंगी होकर बिना किसी कष्ट के वह पुत्र प्रसव करे।"

इसी प्रकार ब्राह्मणों के साथ भी, जैसे कि विश्व के सभी प्राणियों के साथ, उनकी पूरी सहानुभूति थी। बावरि नामक ब्राह्मण के एक शिष्य ने जब अपने गुरु की ओर से भगवान के चरणों में प्रणाम निवेदन किया तो भगवान ने आशीर्वाद देते हुए कहा, शिष्यों सहित बावरि ब्राह्मण सुखी हो। माणवक, तुम भी सुखी हो, चिरजीवी हो।"

बुद्ध के पास छोटा-बड़ा, जो भी जाता था, वह उससे कहते थे, "आओ, तुम्हारा स्वागत है।"

भगवान अपनी अंतिम यात्रा में पावा और कुसीनारा के बीच जा रहे थे। रास्ते में उन्हें पुक्कुस मल्लपुत्र नामक व्यापारी मिला। उसने उन्हें एक दुशाला भेंट किया। परन्तु भगवान उसे अकेले कैसे ओढ़ते? वह अपने शिष्य आनन्द को सम्मानित करना चाहते थे। उन्होंने कहा, "पुक्कुस, दुशाले के एक भाग को मुझे ओढ़ा दे, दूसरे को आनंद को।" पुक्कुस ने ऐसा ही किया।

भूल करने वालों के प्रति भी बुद्ध की अनुकम्पा का पार न था। एक बार एक ब्राह्मण ने भगवान को वेरंजा में वर्षावास करने का निमंत्रण दिया। भगवान वहाँ गये, लेकिन वह ब्राह्मण बहुधंधी था। उसने उनकी कुछ भी सुध-बुध नहीं ली। बुद्ध को बड़ा कष्ट हुआ। उन्हें तीन महीने तक कुटा हुआ जौ रोज खाना पड़ा, क्योंकि उस समय वेरंजा में अकाल पड़ रहा था और वह जौ भी उनको और उनके शिष्यों को घोड़ों के व्यापारियों से मिलता था। इतना होने पर भी वर्षावास की समाप्ति पर भगवान बुद्ध अन्यत्र जाने से पूर्व वेरंजा जाकर ब्राह्मण को आशीर्वाद देना नहीं भूले।

भगवान बुद्ध के जीवन में ऐसी अनंत घटनाएं मिलती हैं। उनमें हमें उनकी मानवता के दर्शन होते हैं। उनके जीवन में कोमलता की पराकाष्ठा थी और उनकी वाणी में अपूर्व माधुर्य था, जो सबको अपनी ओर खींचता था। उनके मुंह से क्रोधभरा शब्द कभी नहीं निकलता था। वह मनुष्य थे, परन्तु मनुष्य की दुर्बलताओं से ऊपर उठ चुके थे। उनके व्यक्तित्व में मानवता की शुभ ज्योत्स्ना धर्म की स्थिति बनकर चमकी है।

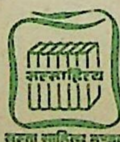
'मण्डल' द्वारा प्रकाशित

सुबोध साहित्य माला

□

- भारतीय लोक-कथाएं
- सफलता की कुंजी
- हमारे संत-महात्मा
- हमारे प्रमुख तीर्थ
- हमारी आर्दश नारियां
- हमारी नदियां
- बापू का पथ
- विश्व की श्रेष्ठ कहानियां
- माताजी का दिव्य दर्शन
- संतों की सीख
- ईंट की दीवार
- बेताल पच्चीसी
- सिंहासन बत्तीसी
- बड़ों की बड़ी बातें
- हमारी बोध-कथाएं
- पथ के आलोक

□□



सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन